

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180195

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—67—11-1-68—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1

Accession No. P. G. H3

Author

N14P

Title

नागर, असुनालक

पीपल की परी. 1963

This book should be returned on or before the date last marked

पीपल की परी



अभूतलाल नागर



संध्या प्रकाशन, दिल्ली ।

प्रकाशक

सध्या प्रकाशन,
१२४१, मालीवाडा
दिल्ली-६

प्रथम मंस्करणा

मूल्य

२ ५० रु०

१९६३

मुद्रक

अजन्ता प्रिंटर्स,
गेड १३, नई मन्डी,
गुजाफरनगर ।



संख्या प्रकाशन
१२४१, मालीवाड़ा
दिल्ली-६

पीपल की परी

है दुनिया दुरङ्गी मकारा सराय,
कहीं खूब-खूबाँ कहीं हाय-हाय ।

ऐ दिले-नेक, आशिके-दास्तान, दुई को छोडकर यकरंग हो जा
क्योकि लिखा है कि अल्लाह एक है । वह रहीम है, करीम
है, अपने बंदों की फरियाद सुनता है । सदियो पहले आसफउद्दौला के
जमाने में जब यह मुहल्ला आबाद हुआ तो लोगों ने कहा कि यहाँ खुदा
का साया भी हो । फौरन धरती फोड़कर दरख्ते-पीपल उग आया ।
सदियो उसमें कटे कनकौवे उलझे, कौवों ने बसेरा लिया । चोरो ने उसकी
शाखों-शाखों जाकर लोगो के घरो की जमा पूँजी उडायी ।
निठल्लों की बन आयी । दिन भर उमी के साये में बैठकर इधर-उधर
आँख लड़ायी । दिन को लौडों का और रात को कुत्तों का शोर रूहा ।
बहरहाल सदियों से इस पीपल का बड़ा जोर रहा ।

मगर ठहर ऐ दिले-नेक, आशिके-दास्तान, दुई को छोडकर
यकरंग हो जा । कायदे-अदब को न भूल । शाहे-जमाना को याद कर
कि जिनके डर से तरुतो-ताज के पुराने मालिकान अब ताश के पत्तो
में जा समाये हैं । उनके वारिस अब दुनिया में फ़क़त चार हैं । एक
ग़प्तालिस के भाई क़प्तालिस हैं, दूसरे सालियों के शौकीन सोसालिस
है, तीसरे कमीनेस्त और चौथे शाहंशाह डैम-ओ-कुरसी है । इन्ही

चौथे शहंशाह की हुकूमत इस वक़्त हिन्दुस्तान में है। हरसूँ भले-बुरे डैमो की ही धूम है—भाखरा-नगल डैम, गिहद डैम, अक्ल डैम, ईमान-दारी डैम और आम इन्सान डैमफूल है। हरसूँ गरीबी और भुखमरी का बोलवाला है। ऐ चार सौ बीसी, फकत तेरा ही सहारा है। ऐ बड़े-बड़ों की रहनुमा, इस पीपल की फुनगी पर उतर आ तभी इस किस्से का भी गुजारा है।

अज दास्तान-ए-परी पीपल। जमाना-ए-हाल। गली-खस्ता-हाल। रात का वक़्त है। जाड़े का मौसम। गली में सौ गज़ के फासले पर बिजली के दो लट्टू जगमगा रहे हैं। दस सवा दस का अमल है मगर घरों के आम दरवाजे बंद हो चुके हैं। इक्के-दुक्को की आवा-जाही अब भी जारी है। कुत्तों का मुशायरा हो रहा है, हरसूँ भौ-भौ की वाह-वाही है। कहीं एकाध बच्चा शायद बिस्तर गीला करने के बाद केहों-केहाँ कर रहा है। कहीं-कहीं टाट के भीने परदों की ओट लेकर डोली-कहारों की सड़क पड़ती कोठरियों के दिये टिमटिमा रहे हैं। कहीं नींद आने से पहले महरा-महरी की बातों में घर-गिरस्ती, नाते-गोतियों के चर्चें रुई और दुई से भी ज्यादा गर्मा रहे हैं। 'हमका का परी है, न्यौता भेजै चहै न भेजै, जहन्नम माँ जायँ।' 'हमार जीजा का तुम जहन्नम माँ काहे भेजत हो, जायँ तो तुम्हरे जायँ।' 'हरामजादी, हमरे जीजा का कहिहो तो हियनै कबर खोदि कै दफन करि दयाब समुगी का।' बन्ने ने अभी आकर इक्का खोला है। ताड़ी के नशे में अपनी घोड़ी की गर्दन थपथपा औ 'जाने-मन' कहकर उसके कान का चुम्मा लेकर, घास का पूला अब तक न लाने वाली अपनी बीबी को गुस्से में साली बना रहा है। सन्नाटे की डोर में यही दो-चार गिरहे अटकती है गोया याद दिलाती हो कि जब सबका मिरजनहार ही कभी चिड़ीचुप होकर नहीं बैठता और न सोता ही है तब उसकी दुनिया में भी ये अधेर न हो।

मगर तभी गली के दोनो तरफ बिजली के लट्ठुओ पर टना-टन की आवाज होती है और गली में अंधेरा गुप्त छा जाता है। हाथ को हाथ पसारा न सूझे, वो समाँ बँध जाता है और नुक्कड़ से गली में धँसती हुई दो-तीन जोड़ी जूतों की खटाखट और चरमर आवाज आने लगती है। पैरों की आहट के पीपल के पाम तक आते न आते एकाएक देखते क्या हैं कि पेड़ तले भक् से ऐमा उजाला हो गया मानो आज की रात सूरज भी इसी पीपल पर बसेरा करने आया हो। पेड़ के नीचे थे इसी गली के बाशिंदे जौहरी अब्दुल्ला सेठ और उनके दो कारिंदे। रौशनी के साथ-साथ जो तीनो की नज़र ऊपर गयी तो एक तो चीखते ही बेहोश हो धोंय से गिरा, दूसरा उल्टे पाँव पत्ते छू भागा और अब्दुल्ला सेठ की धिग्धी बँध गयी। दोनो पाँव थर-थर काँपते हुए भी जाम हो गये, जिस्म पत्थर हो गया और खोफ बिजली के करेट-सा उसमें धरता रहा। एकाएक फिर अँधेरा गुप्त हुआ, धग्गी पर एक धमाका हुआ और पेड़ के चारो ओर घुँघरू छमाछम यों दौड़ने लगे मानों कोई अलहड शोख हसीना चकफेरियाँ ले रही हो।

ऐ किस्सा पढ़ने वाले दोस्तो, आप हैरत में होगे कि ये यका-यक क्या हो गया और अब आगे क्या होने वाला है। मगर होता है वही जो मजुरे-खुदा होता है। बेचारे अब्दुल्ला सेठ के नमीव में आज की रात यही बदा होगा कि आमेबी चक्कर में पड़ें। इस दग्गले-पीपल पर आज करीब छह-छह महीनो से एक भूतनी रहती है। उसके मारे बड़े-बड़ो की हवा गुम है। मुहल्ले के मिरताज सबजजी के पेशकार जनाब मीरन साहब की तब से कई बार बुरी गत बन चुकी है। दुनिया भर के भूत-जिज्ञातो को बस में करने वाले बड़े सरनाम मौलवी कुतुबुद्दीन, बाजवाने-आम मौलवी कुदूबुद्दी, का घर एकदम पीपल से लगा हुआ ही है। उनके घर में कभी मैला पड़ता है, कभी पटाटप बारूद के गोले फूटते हैं, कभी आग लगती है, कभी मौलवी साहब

नीचे और चारपाई ऊपर होती है और एक बार तो दाढ़ी मूँडकर उनका मुँह भी काला किया जा चुका है। इन दो के अलावा आज ये तीसरे अब्दुल्ला सेठ फँसे।

गली में इस वारदात की भनक तो कई कानों में पड़ी मगर ऐसे में भला कौन पास आता ! ज़ारा देर बाद जी कड़ाकर के इधर से गफ़ार बिजली वाले ने अपने बाहर की लाइट खोली, उधर से बूढ़ा बसंतू कहार वगैरह आये। देखा तो सेठ जूता-मोज़ा पहने लगोटा बाँधे, नगे बदन गली में चारो खाने चित्त बेहोश पड़े हैं। उनका कुरता, शेरवानी, पाज़ामा, टोपी, चमड़े का बेग वगैरह सब गायब है। पास ही उनका कारिदा भी उसी हालत में पड़ा है, फ़क़त उसकी एक तरफ़ की मूँछ और भौ पर गहरा बाल सफ़ा लोशन रगड़ दिया गया था सो उठाते ही वे झड़ पड़ी। बसंतू को यह देखकर भरी दहशत में भी हँसी आ गयी। इन लोगों के हौसले को देखकर और लोग भी आगे बढ़ आये थे।

इस पीपल की परी को तो सभी जानते हैं। जब जीती-जागती थी तब गली की रौनक थी। नाम शरबती, आँखे शरबती, बोली में मिठास, रोने में नमक और हँसने पर फूल झड़ते थे। शरबती बगैर माँ-बाप की बेटी थी। तीन बरस की उम्र में अनाथ हुई, सात चूल्हों पर सिकी रोटियों के जूठे टुकड़ों से पली-बढ़ी, फटे-चीयड़ों में खुले-मुँदे रफ़त-रफ़ता उसका जोबन फूटा जिसे देखकर भूखे भेड़ियों की आँखों में खूनी चमक आयी। शरबती के लिए हर घर शेर की माँद बन गया और गली बाज़ार शहवत के खूँख़ार दरिन्दों का जगल। उसका निकलना-चलना मुहाल था लेकिन बत्तीस दाँतों के बीच में बड़े बचाव से ज्यों शोख और चटोरी ज़बान चलती है त्यों शरबती भी चल निकली।

किसी न किसी घर का सौदा मुलुफ लाने के लिए दिन में दस बार सुलेमान पन्सारी के यहाँ जाना पड़ता, वह थुलथुल मोटा मेढक बहुत पीछे पड़ता था। जब यह छोटी नौ-दस बरस की ही थी तभी से वह ज्यादाियाँ करने लगा। सौदा-पैसा देने-लेने में वह इसका हाथ पकड़ कर ऊपर अपनी गोद में घसीट लेता और फिर दबोच कर उसकी हर गत बनाता और बाजार वाले हँस-हँस कर मजा लेते थे। वह उससे नफरत करती थी। वहाँ नहीं जाना चाहती पर न जाये बिना क्योंकर चलता। जो कोई घरवाली दो जूटे टुकड़े खिलाती या फटी उतरनें पहनने को देती वही काम भी लेती थी। मुफ्त में कौन देता है ? उसे दिन में दस-बीस बार बाहर आना-जाना पड़ता। मुहल्ले में सुलेमान की बदौलत जब वह एक बार हँसी और छेड़ का सामान बन गयी तब हर कोई छेड़ता। शुरू में सैकड़ों बार आखों से चौधारे बहा-बहा कर फिर जाने कहाँ से उसमें अक्ल फूटी, ऐसी चरबाँक बनी कि उससे पार पाना मुश्किल हो गया, अच्छे-अच्छो को चूना लगा दिया। बाप और बाबा की उम्रवालो से लेकर नौजवानो तक ने शरबती की नौजवानी आने से पहले ही उसे भीतर की समझदारी में पोंढी औरत बना दिया था। जो वार करने को झपटता उसे ललचाकर अपनी शरबती आखों की मोहनी से बाँध देती थी। शरबती आँखें नचाना, भोली बातें बनाना, बहलाना-बहकाना, लोगो में आपसी जलन पैदा करवा के लड़ा देना, कल बोसा देने के वादे पर आज किसी से कुछ खा-चाट लेना वगैरह-वगैरह बातों में नम्बरी हुनरमन्द हो गयी।

शरबती अपने-आप ही में एक से दो हो गयी। ऊपर वाली शरबती चरबाँक थी और भीतर वाली सजीदा। जो भीतर-वाली थी वह घर के भीतर ही रहना चाहती थी। मगर कौन रखता ? जब छोटी थी तब रात के वक़्त किसी की दहलीज-दालान में दुबक कर

पड़ रहती थी। मगर अब वह बड़ी और बदनाम हो चली थी। हर घर की माओं, बीवियों को अपने कुंवारे जवान बच्चों या बिगड़े दिल शौहरों के खुदा-न-खास्ता हाथ-बेहाथ हो जाने के डर से उसे अपने यहाँ सुलाने में गुरेज था। करीब-करीब हर जगह, हर रात सोने के लिए टटा मचता। पैरो पड़कर रोकर किसी न किसी तरह कही न कही पनाह पाती ही रही मगर फिर उसके लिए पनाह पाना भी एक अहम सवाल हो गया था।

अब्दुल्ला सेठ लखपती आदमी शरीफ खानदान के थे। उनके वालिद बमरा-बगदाद से आकर यहाँ बसे थे। मोतियों का खास कारबार था। अब्दुल्ला सेठ की बीबी बड़ी नेक, हसीन और शरीफ थी। अब्दुल्ला सेठ यों तो हर तरह से भले, इन्साफ़-पसद, सजीदा और दिलवाले थे मगर बाजारू लड़कों के पीछे दीवाने रहने के सबब से अपनी बीबी को कभी चैनो-कगार न दे पाये। एक लड़की थी, उसी का मुंह देखकर वह जीती और खुश रहती थी। शरबती उन्हीं के पाव पकड़कर रोयी। अब्दुल्ला सेठ की बीबी को दया आ गयी, अपने पास रख लिया। वो दो-ढाई साल शरबती की तब तक की जिदगी में सबसे उम्दा गुजरे। अब्दुल्ला सेठ की बीबी ने शरबती को सदा घर के काम-काज में ही रक्खा; कभी बाहर नहीं भेजा। घर के किसी नौकर की मजाल नहीं थी जो शरबती को छेड़ देता। लड़की बड़े सलीक़े में पड़ गयी। पढ़ना-लिखना, सीना-पिरोना आ गया। खाना बनाने में हाथ सधने लगा। अलम्-सकून में और साफ़-सुथरी रहने की वजह से शरबती के चेहरे पर ऐसा निखार आ गया था कि बाहर वाला अनजान उसे धोखे में अब्दुल्ला सेठ की ही दूसरी लड़की समझता था। पर शरबती की बदनसीबी से अब्दुल्ला सेठ की बीबी अचानक दिक् होकर मर गयी। हालाँकि मरने से पहले बीबी ने अपने शौहर से वादा कराया था कि शरबती की कहीं शादी क। देंगे मगर

अब्दुल्ला सेठ को एक मुद्दत तक उस फिक्र को साधने की फुरसत न मिली, हालाँकि यह नेक इरादा अक्सर जाहिर कर दिया करते थे। साल भर बाद ही अपनी लड़की की शादी उन्होंने धूम-धाम से कर दी। वह अपने घर चली गयी। अब्दुल्ला सेठ के सूनने जनानखाने में भद्र गदरायी हुई शरबती की सोलह के सिनवाली जवानी फिर बेपनाह हो गयी।

मुहल्ले के एक कदीमी बाशिदे और लीडर, सबजजी के पेशकार जनाब फलाँ-फलाँ उर्फ मीरन साहब अब्दुल्ला सेठ के बचपन के दोस्तों में से थे। पुराने साथियों में यही दो हैसियतदार थे, लिहाजा खूब पटती थी। अब्दुल्ला सेठ को खाने-खिलाने का शौक था और मीरन साहब मुफ्तुल्ले-ऐश-पसद थे। दोनों दोस्त चूँकी आबरूदारी पर जान देते थे, लिहाजा ऐब ढँक कर करते थे। अपने ऐबो के लिए खुदावदे करीम की रहमत पर भरोसा रखते थे और जमाने के तमाम ऐबो और ऐबवालो के लिए सरे-ग्राम सदा तेवर तने रहते थे; जमाने भर को सजा देने के लिए मानिन्द-तलवार के म्यान से बाहर निकल पड़ते थे—ऐसे बड़े आबरूदार थे।

मौलवी कुदबुद्दी ने एक रईस बेवा को अपने पुराने शौहर के आसेबी चक्कर से बचाया था, बाद में भाँसा देकर उससे शादी कर ली थी। मौलवी साहब को सई-शाम से चडू के छीटे उड़ाने और रात भर गहरी पिनक में रहने की आदत थी। औरत को शाम से ही कोठरी में बंद कर दिया करते थे। सुबह उठ के ताला खोलते और हुक्का भरने का हुक्म देते। फिर तोला भर अफ्रीम केवड़े में घोल-पी कर अमल में दून की हाँकते हुए दोपहर तक पचासो के आसेब भाड़ते, गडा-तावीज़ बाँटते, रुपये कमाते। फिर दस्तरख्वान बिछता। खाने के शौक्तीन थे। बेगम के साथ खाना खाते, फिर रस की बुढ़भस निकालते और अपनी जवानी के ज़ोम बखानते। फिर शाम

को वही ताले-कुंजी और चंडूबाजी का वक्न हो जाता। बेगम की खायी-पली हबिस की माती देह इस घुटन को तोड़ कर आजाद होने के लिए मचल उठी। वह सोचे कि किसी तरह तलाक लूँ और दूसरा शौहर करूँ। एक दिन उसने जल्द नींद लगने का बहाना किया और ऊपर अपनी कोठरी में चली गयी। बिस्तर पर लम्बे-लम्बे तकिये रख कर चादर उठा दी और आप जीने के पीछे दुबक रही। मौलवी साहब उमे सोता समझ बदस्तूर ताला लगाकर चले गये। औरत छत फाँदकर पड़ोस के घर में गयी। सब हाल कहा। हमदर्द पड़ोसी कानूनी सलाह के वास्ते पेशकार साहब को बुला लाया। उस बहाने से दोनों में जान-पहचान हुई और फिर तो ऐसी चाले चली गयी कि मीरन साहब अक्सर अपनी रातें मौलवी साहब के यहाँ गुजारने लगे। बाद में मौलवी साहब को सब कुछ मालूम हो गया मगर वे दबे रहे। मौलवी ने औरत से बदला ले लिया। मीरन साहब को कुछ दिन के वास्ते एक दूसरी आखेंबी चक्कर की चिड़िया के जाल में फँसा दिया और उस औरत को धीमे अंतर वाला जहर देकर रफ़ता-रफ़ता मार डाला। तब से 'मुफ़्तुल्ले-ऐयाश' बेचारे मीरन साहब के वास्ते बीबी उर्फ़ घर की मुर्गी को छोड़कर दिलबस्नगी का कोई सामान न था।

सेठ अब्दुल्ला के सूने घर में खिली शरबती की जवानी को देखकर मीरन साहब अपने काबू में न रह सके। दोस्त को दबाने लगे। उन्होंने अपनी बीबी को शरबती की शादी के बाबत किये गये वादे की दुहाई दी। मीरन साहब ने कहा कि मौलवी कुतुबउद्दीन से करा देंगे। इस तरह शरबती मौलवी कुतुबउद्दीन की बीबी और मीरन साहब का खिलवाड़ बनी।

शुरू-शुरू में तो शरबती का चेहरा देखकर मौलवी कुदबुद्दी के बुढ़भस को रीझने और मन बहलाने का शग्ल मिला मगर बाद में

बात बात पर चिढ़ कर उसे बेतो से नीली-पीली बनाने लगे। वह चीखती-चिल्लाती तो आप भी जोर-जोर से अरबी-फारसी के मंतर बूँकने लगते। लोगों से कहते कि उसका भूत भाड़ता हूँ। चिढ़ इस बात की थी कि मीरन साहब से तो कभी धेले की आस न थी और ऊपर से शरबती के खाने-पाने का खर्च सहना पड़ता था। पुरानी बीबी तरह-तरह के खाने पकाने में होशियार थी, शरबती के पास वह हुनर कहाँ ? मौलवी कूदकूदी दर-अस्ल बड़े बुजदिल थे, मीरन साहब की पेशकारी का रौब उन्हें ख्वाहमख्वाह हरदम दबाये रखता था। शरबती मीरन साहब से मौलवी साहब की शिकायत करनी तो वे तसल्लियाँ देते थे कि जल्द ही दूसरी जगह तुम्हारा इतजाम कर रहा हूँ।

शरबती दबी बिल्ली-सी घुटने-घुटते एक दिन शेरनी बन गयी। सुबह का वक्त था। बैठक में गड़े-ताबीजवालों की भीड़ लगी थी। मौलवी साहब अनकरीब नौ बजे नशे की तड़क में हस्वमामूल अदर दूध-हलवे का नाश्ता करने गये तो चुन्हे को ठण्डा और शरबती को अपनी कोठरी में लेटे हुए पाया। तैश में आकर उसका भूत भाड़ने के लिये बेत उठाया ही था कि शरबती पैट्रोल की टकी की तरह भभक उठी। फिर तो मौलवी साहब कोठे-कोठे, छत-आँगन नाचते फिरे। लोगों ने समझा कि आज उनका भूत भाड़ा जा रहा है और शरबती के मतर अरबी फारसी के न होकर खालिस हिन्दुस्तानी के सुनाई पड़ रहे हैं जिसमें मीरन साहब और मौलवी साहब की इज्जत पानी की तरह उतर रही है। बड़ी जग-हँसाई हुई। दिन भर, बल्कि दो-चार दिनों तक, मौलवी साहब और मीरन साहब के हँसी-मजाक और बदनामी भरे चर्चे हरसूँ हर ज़बान पर बसन्ती गुलों की तरह खिलते रहे। मीरन साहब ने अपना ताल्लुक कतई तर्क कर दिया, यहाँ तक कि उस गली से आना-

जाना तक छोड़ दिया। मौलवी कुदबुद्दी के घर के मेले और उनकी आम-दनी पर भी कुछ न कुछ अमर पड़ा। मौलवी साहब तप-तप उठे। एक दिन उन्होंने खुद अपने हाथ से हलवा पकाया और बड़े लाड़ से शरबती को खिलाने आये। शरबती समझ गयी कि कुछ दाल में काला है मगर मक्कर किया। बाद में यह भी दरसाया कि उस पर जहर का असर हो रहा है—तड़पी, एड़ियाँ रगड़ी, काँखी, कराही और हाथ-पैर ढीले डालकर लेट गई। मौलवी साहब को यकीन हो गया कि मर गयी। फिर कुछ देर तक जोर-जोर से रोते रहे और भटपट अफीम घोलते रहे। उस रात शरबती का जनाजा निकालने की फिक्क में चन्डू के छीटे उड़ाने की फुरसत न थी और शरबती की मौत की खुशी में अमल का जोश दूना था। फिर कफ़न-दफ़न का इन्तजाम करने के लिए बाहर निकले। ताला लगा गये। इनके जाने के बाद शरबती उठी, मौका-महल ताका और बैठकखाने, का दरवाजा खोलकर गली में लुप् से निकल आयी।

मौलवी साहब के घर के सामने ही घसीटे पहलवान का मकान पड़ता था। दरवाजा खुला देखा तो उसी में घुस गई। घसीटे पहलवान तो करीब महीना भर हुआ, गुजर ही गये थे पर उनका इकलौता लड़का गप्फार अन्दर बैठा अपने बिजली के धधे का ही कुछ काम बना रहा था। दो बाहरवाले भी मौजूद थे। शरबती दरवाजे की ओट हो गयी और कुन्डी खटखटाकर गप्फार को बुलाया। शरबती ने उसके पाँव पकड़ लिये। अपने आंसुओं को रुमाल से ढँक कर उस नौजवान के खुराक़े-दिल के लिए अदाओं की लुभावनी प्लेटे सजा दी। शरबती का पुराना जादू तो सब के सर पर चढ़ा हुआ था ही, फिर बरसों बाद देखने को मिली। गप्फार भड़ी पर चढ़ गया। उसे अपने घर में छिपाकर पनाह दी।

इधर मौलवी कुदबुद्दी मयत का सारा इन्तजाम करके आदमियों

के साथ घर लौटे तो देखा कि लाश लापता थी। बैठकखाने का- दर वाजा खुला पाकर उन्हें यकीन हुआ कि शरबती जंहर की पुडिया निकली, दगा दे गयी। बड़े घबराये। दौड़े हुये मीरन साहब के यहा गये। कहा कि 'सरकार तुम्ही ने दर्द दिया था, तुम्हीं दवा देना।' मीरन बोले कि 'खैर, तुम झूठा जनाजा ही निकलवा दो, ताकि उसकी खबरे-मौत कानूनन पुख्ता हो जाय।' ताबूत वालों को रिश्त देने के बहाने कभी धेला न खर्च करने वाले मीरन साहब से मौलवी साहब कुछ न कुछ भटक ही लाये। यो मामला रफा-दफा हुआ। कुछ लोग मजाक में मातमपुर्मी करने मौलवी साहब के यहाँ आये। चार-छह रोज तक शरबती के मरने का चर्चा मुहल्ले-सुलेमान की दूकान पर और लोगो की जवानो पर रस का बायस बनकर चढ़ा रहा।

इधर शरबती गफ्फार से बोली कि मियाँ बाकायदा शादी कर के रखोगे तब तो रहूँगी, वरना अब इस जिन्दगी में दिलचस्पी नहीं रही। यो भी मर तो चुकी ही हूँ, दरियाए-गोमती में जाके डूब मरूँगी। गफ्फार ने फौरन उसे सीने से लगाया। कहा कि 'मैं शरीफ हूँ। अगर तुम वफादारी निभाओगी तो मेरी ओर से कोई शिकायत न पाओगी। मगर यो भूतनी से शादी न करूँगा। तुम्हे अगर जिन्दा न किया तो नाम गफ्फार नहीं।' शरबती ने प्यार के जोश में अपनी दोनो बाहो को गफ्फार का गलहार बना दिया और बोली कि 'अगर तुम मेरी ओर से इस मुवे मौलवी और निगोडे मीरन मे इन्तकाम लोगे तो तुम्हारे पैरो की जूती बनने के वास्ते जिस्म की चमडी काटकर हाजिर कर दूंगी।'।

गफ्फार मियाँ कारसाज थे। एक रात अपनी छत से पीपल पर चढ़े और गली पार कर मौलवी की छत पर टपक पड़े। मौलवी साहब हस्वमामूल नशे में अंटागफील थे। फिर भी हिफाजत के लिए उनकी कोठरी का कुडा चढ़ाया और उनकी बैठक में छिपाकर

एक छोटा-सा लाउडस्पीकर फिट किया, तार धन्नियों और कानिसों में छिपाकर इस सफाई से ले गये कि कहीं से दिखलायी ही न पड़ता था। कोने की कानिस में घूहे का बिल होने के सबब से छत फोड़कर तार बाहर निकालने में खुदाई मदद-सी मिल गयी। वहीं से पीपल शुरू होता था। तार को पीपल की टहनियों में छिपाकर खींच ले गया। अब मजा यह हुआ कि दूसरे रोज सुबह, जबकि मौलवी कुदबुद्दी के आसेबी मरीजो का मजमा लगा हुआ था तभी, गफ़ार के घर में बैठी हुई शरबती नक्की सुरो में माइक्रोफोन पर बोलने लगी, आवाज़ मौलवी कुदबुद्दी के बैठक-खाने में आने लगी। “इंस मुँवे मौलवी ने जँहर का हँलुवा खिलाँ के मुझे मारा है। अब मैं भी इसे खिलाँ-खिलाँ के मारूँगी। ...अय भोले-भोले लोगो, तुम किस खूसट जालिम के फरेब में फँसे हो ! इसे मैंने न तो कभी रोजा-नमाज का पाबद पाया और न कभी यह देखा कि इल्में-गैब की मश्क करता है। यह फ़क़त ढोग करता है। ...सुँबूँ दांपहँर अफीम धोलताँ है। शाम को छोटें उँड़ाने से इसे फुरसत नहीं। ऊँपर से बड़ा भूँतो का भाँड़ने वाला बनता है। जई देखना तों, इस मु वे की कैसी कु दी बनाती हूँ।”

मौलवी साहब को सुनते ही राश आ गया। मजमा चेमीगोइयाँ करता, उनके नाम धरता, उनकी शान में गालियो का शाहनामा पढ़ता हुआ रफा-दफा हुआ।

दूसरे-तीसरे ही रोज़ रात में गफ़ार ने उसी तरकीब से मौलवी कुदबुद्दी के घर जाकर पिछवाड़े का दरवाजा खोला और भगी के लड़के को मौलवी साहब के घर में दाखिल कर दिया। दूसरे दिन मौलवी कुदबुद्दी का तमाम दिन अपना घर धुलवाते और लाहौल पढ़ते ही बीता। एक दिन मौलवी साहब के चूल्हे में, हुक्के की तबाकू में, आटे में बारूद मिला आये। मौलवी साहब सुबह हुक्का पीने बैठे तो तंबाकू में लौका उठा। चूल्हे में आग लगी। पराये घर अपना

आटा ले के दो रोटियाँ सिकवाने गये, वहाँ भी आटे में सनी गीली बारूद तबे पर सिकते-पकते चूल्हे में जाते ही भक से जल उठी, धुआँ धँसक उड़ी। इसके बाद मुहल्ले में कोई उन्हें पानी लेने-देने का भी रवादार न रहा।

इधर मीरन साहब का यह हाल हुआ कि एक दिन रात में उनके सिनेमा से लौट कर आने के वक्त उनकी गली के नाबदान का पत्थर हट गया और वे गडाप से उसमें जा समाये। एक बार रात में अनकरीब साढे बारह-एक बजे अपने इजलास के हुजूर जज साहब के चन्द मेहमानों को अग्रेजी सिनेमा दिखलाने के बाद अब दूसरी खास दावत में शरीक होने के लिए अपने खास-उल-खास अजीज दोस्त सेठ अब्दुल्ला के यहाँ जा रहे थे। शाम को सेठ के यहाँ ही इस वक्त आने की बात तय हो चुकी थी। बड़े मगन थे। सीटी बजाते गली के सुनसान को मस्ती से गुँजाते बेहोश चले आ रहे थे कि अंधेरे में पीपल से एक खाली कनस्टर इनके आगे गिरा। ये ठिठके, तभी गहन अंधेरे में पीछे से एक भूत ने आके इन्हे दबोच लिया। जब तक ये मम्हले-सम्हले कि वह तेल-चिक्कन काला भुजग इनकी गर्दन पर सवार। घिघिया के धम-से गिरे। कन्धे पर कटार-सी चुभती थी कि फिर होश कायम न रख सके। वारदात के बाद पाँच मिनट तक कही जूँ भी न रेगी। फिर इधर से गफ़ार अपनी छत की मुडेर से भाककर बोला, “ममाँ बसतू चच्चा होत्।”

“हा बेटा, घबराना नहीं। हम महजूद हन। औ ऊपर पीपल के पास ठडे होने का कोई काम नहीं। नीचे जाओ फ़ौरन।”---सफ़ेद बुराँक बड़ी-बड़ी मूँछोवाले बसतू कहार की बुजुर्गाना फटकार-भरी कड़ियल आवाज गली में ज़रा दूर से आयी।

“नही, मैंने कहा कि अब लैट जला के देखने में कोई हरजा तो नही-ना !”--गफ़फार ने फिर कहा ।

“अबे, नीचे उतर लौंडे ! वो पीपल वाली है, बेट्टा ! नीचे से लैट दिखा आके । मैं आता हूँ ।”

बसतू कहार के डर से शरबती और गफ़फार को गुप्तचुप हँसी आयी । बुजुर्ग के प्यार पर गफ़फार के मन में अदब जागा । खुदा का नाम जोर-जोर से लेके गफ़फार ने अपने घर के दरवाजे की लाइट खोली, फिर दरवाजा खोला और लबी डोरी में दो सौ पायर का बल्ब लगाकर आगे बढ़ा । बसतू, जुम्मन, बन्ने, बुलाकी, कई बड़ी-बूढ़ी महरी दाइयाँ भी आगे आयी । देखा, मीरन साहब । नया सूट इस तरीके से फटा था कि फकीर के पहनने काबिल भी न रहा । मीरन साहब होश में लाये गये । उधर अब्दुल्ला सेठ और इधर इनके घर तक खबरें पहुँचायी गयी । गफ़फार इन्हे होश में लाकर बाग़दब मिजाजपुर्सी व रंज जाहिर करता हुआ इनकी खिदमत में लगा रहा । कुरसी लाया । छोटे-बड़े लोगो की भीड़ जब परी-पीपल के शहीद मीरन साहब को कुर्सी पर उठाकर ले चली तो यह जिक्र भी आया, मौलवी साहब ने अब उस आसेब को अपने घर से निकालकर गलीवालो की मुशीबत का बायस बना दिया है । मीरन साहब ने अपने मन में ये धर लिया कि मौलवी की कारस्तानी है ।

मीरन साहब दूसरे रोज अपने दोस्त पुलिस के थानेदार को दो-चार सिपाहियों के साथ बुला लाये । सब को पीपल तले बुलवाकर बड़े गरजे-बरसे । गफ़फार बड़ी फर्मावरदारी में रहा । अदब से अपना खौफ़ और चुड़ैल से दो मुठभेड़ो की दास्तान सुनायी । थानेदार ने मौलवी साहब के और आस पास के दो-चार घरों में तलाशी लेने का हक्म दिया । गफ़फार सब जगह तलाशी दिलाने ले गया । सब घरों का

कोना-कोना सिपाही छान आये, मगर कही शरबती का पता न चला । उसकी भूतिया कार्रवाइयो के चकमे में मीरन साहब अपनी जान और इज्जत को फँसा बैठे । तलाशी के दूसरे दिन मीरन साहब अपने घर में सुबह जो सोकर उठते हैं तो देखते हैं कि सामने के आले में आईने के आगे एक दात निकालती हुई खोपड़ी रखी है । मीरन साहब चीख उठे । घरवाली अन्दर आ गयी । बेटे-पतोहू, नौकर, महरी भी दौड़ पड़े । अब खोपड़ी पर जो नाम पढ़ते हैं तो लिखा है 'शरबती' । घरवाली नौ-नौ बास उछली । "यही तुम्हारे गुनाहों की सज़ा है । मैं कहती हूँ, और हो, और हो, अल्लाह करे ! जैसा तुमने मेरा रोआ रोआ सताया है—उस मुर्दार मौलवी की निगोडी पहलीवाली के पीछे मुझे क्या नहीं सहना पड़ा ! और अब यह दूसरी वाली को लेके तुम्हारे अजाब मुझ पर और मेरे बाल-बच्चों तक पर पड़ रहे हैं । मुन्ने, बेटा, तुम आज ही किराये का दूसरा मकान देखो । रहें ये यही । वह चुड़ैल....."

मीरन साहब घर से लेकर बाहर तक मुंह दिखलाने के काबिल न रह गये । मौलवी कुदबुद्दी के दरवाजे तो चौबीसों घंटे बन्द रहने लगे । शरबती आसेब ने उन पर यह असर तो जरूर डाला कि बुढापे में आकर जानोईमान से रोजे-नमाज के पाबन्द हो गये । पाँचों वक्त की जानमाज बिछने लगी । तसबीह हरदम फिरने लगी । आंखें हरदम खौफे-खुदा से ऊपर ही टँगी रहने लगी । होठों से हर वक्त बुदबुदाते थे । "जल्ले जलाल हू । आई बला को टाल तू ।"

बहरहाल यो ही कभी पेशकार मीरन साहब के घर के नौकर, शरबती के पुराने चाहने वाले टेसुआ को साधकर कुछ तमाशे करवा देते और कभी मौलवी साहब पर करम हो जाता । कभी-कभी आधी रात के वक्त पीपल के पेड़ से घुंघुआ की झनकार, खिनखिलाकर हँसना, नवकी सुरों में न जाने किस जबान में भूतिया तरानों के

भलक-पलक प्रोग्राम से पब्लिक को सहमा दिया जाता । कभी मुटल्ले सुलेमान के लिए धमकियो-भरी बातचीत सुनायी पडती । चुड़ैल शरबती कहती कि वह थुलथुल मेढक अगर मुहल्ले के पाच गरीब लड़कों और पाच लड़कियों की साल भर की फीस हर एक के घर इकट्ठी न पहुँचा देगा तो उसकी तोद काटकर, उसका नगाडा बना कर यही पीपल तले बजाऊँगी ।

पीपल की परी के ये करिश्मे पिछले कुछ महीनों के दौरान में हुए तो कुल जमा कुछ ही मगर उसका हुल्लड बहुत बधा । शरबती के आसेब ने अपनी और आस-पास की कई गलियों के गरीबों का भला करवाया और उसके जस की अजब चाँदनी सी फैल गयी ।

शरबती अब अपना बदला ले चुकी थी । गफ़फ़ार इतने दिनों के साथ में उस पर जान देने लगा था । शरबती उसकी हर विदमत्त में रही मगर अपने को बचाकर रही । इसका अपने ऊपर जबर करने के बावजूद गफ़फ़ार पर गहरा असर पड़ा । साज़िश में मिलाने के सबब से मीरन साहब के घर के नौकर टेसुआ और अब्दुल्ला सेठ के छोकरे रहीमा को भी अस्लियत का पता था, कुछ-कुछ भंगी का लौडा भी जानता था । इन सब का आपस में हमी के मारे पेट फूलता था । अब राज ज्यादाह दिनों तक छिपा रखना मुमकिन न था । पर गफ़फ़ार को जोश चढ आया कि अब्दुल्ला सेठ को भी मजा चखाना होगा । शरबती यह नही चाहती थी मगर मजबूर हुई । एक दिन रहीमा से पता लगा कि सेठ कानपुर गये हैं, रात की गड्डी से लौटेंगे । अंधेरी रात थी, सो पटापट इंतजाम हो गया । पीपल की शाखों में छिपाकर गफ़फ़ार ने ऐसे कँडे में एक फ्लड-लाइट रखी थी कि गली में रोशनी की थाली घुँघुर्घुओं के झमाके के साथ गिर पडे । टेसुए को भूत की तरह भयानक रंगकर एक शाख पर बिठा दिया, जिसे देखकर ही अब्दुल्ला सेठ

और उनके साथी डरे थे । इसी मौके पर समाजी डर के भरोसे पर गफ़ार अपनी मायूका का आखिरी इतकाम लेने के लिए पीपल से कूद पड़ा और अब्दुल्ला सेठ के कपड़े उतार कर, शरबती को अक्सर सताने वाले बाकर कारिदे की आधी मूँछ और एक भौ पर गहरा बालसफा लोशन मल दिया । अब्दुल्ला सेठ के कपड़े और चमड़े का बेग मय-रुपए-टके हर चीज के सही-सलामती से रहीमा के हाथों उनके पहुँचने के पहले ही उनके घर पहुँच गया ।

शरबती के जिदा होने में बस अब इतनी ही कसर बाकी है कि मुहल्ले-सुलेमान से चुड़ैल शरबती और उसके भूत आशिक के निकाह की दावत का खर्च लेना है । उस दिन मुहल्ले भर की दावत होगी । बड़े-बड़े चरचे होंगे, कहकहे लगेंगे मगर शरबती का दीदारे-शरबती अब सिर्फ गफ़ार को ही नसीब होगा । वह औरों के लिए महज एक किम्सा हो गयी है । जैसे यतीम शरबती की जिदगी के धारे में करम-ए-इलाही की मिठास घुली, उसका दिन फिरा वंसे खुदा करे सबका फिरे ।

हाजी कुल्फीवाला

जागता है खुदा और सोता है आलम ।

कि रिश्ते में किस्सा है निदिया का बालम ॥

ये किस्सा है सादा नहीं है कमाल ।

न लफ्जों में जादू बया में जमाल ॥

सुनी कह रहा हूँ न देखा है हाल ।

फिर भी न शक के उठाएँ सवाल ॥

कि किस्से पे लाजिम है सच का असर ।

यही झूठ भी आके बनता हुनर ॥

छापे का किस्सागो अर्ज करता है कि :—

एक है चौक नखास का इलाका और एक हैं हाजी मियाँ बुलाकी कुल्फीवाले । पिचामी-छियासी बरस की उमर है, दोहरा थका बदन है । पट्टेदार बाल, गलमुच्छे और आदाब अर्ज करते हुए उनके हाथ उठाने के अदाजा में वह लखनऊ मिल जाता है जो आम तौर पर अब खुद लखनऊ को ही देखना नसीब नहीं होता । किसी ज़माने में हाजी मियाँ बुलाकी की बरफ और निमिष खाने के लिए गोडा, बहराइच, बलरामपुर, कानपुर और दूर-दूर से रईस शौकीन गर्मी-सर्दी के मौसमों में दो बार लखनऊ तशरीफ लाते थे । बुलाकी की बदौलत चार नाचने-गाने वालियों, उनके लगुए-भगुओं और चार किस्म के सौदागरों का भी भला हो जाता था । बुलाकी मियाँ ने हज़ारों रुपए पैदा किये । पक्का दो-मज़िला मकान बनवाया । दो बार

हज कर आये । पहले लड़के और फिर लड़की की शादी धूमधाम से की । न लड़की रही न लड़का, पंद्रह-बीस बरसों के आटे-पाटे में हाजी पिस गये ।

लड़की का गम लड़के के दम पर सह लिया । लड़का भी ऐसा होशियार था कि बाप का नाम दोवाला किया । सत्रह-अठारह साल हुए एक दिन राह चलते हार्टफेल हुआ और चटपट हो गया । अपने पैरो घर से गया था, पराये हाथों उठकर उसकी लाश आयी ।

साल डेढ साल तो गम में टूटे-सिमटे बदहवास बैठे रहे मगर फिर पोतो के मुँह देखकर हाजी बुलाकी मियाँ ने अपना जी कड़ा किया । सोचा कि घर से निकाल कर खाते-खाते तो एक दिन कारूँ का खजाना भी चुक जाता है, फिर बाद मेरे इन बच्चों का क्या होगा । इसलिये हाथ पैर गो थके ही सही, मगर जब तक चलते हैं तब तक पुराने हुनर से इतने जनों का पेट क्यों न भरूँ—कुल्फियाँ धोने और दूध वगैरा औटाने-भरने के चक्कर में बूढ़ी का ध्यान बँटेगा, दुलहिन का वक्त कटेगा, बच्चों के पेट में बहाने से कुछ न कुछ दूध-मेवा भी पहुँचता रहेगा और मेरा भी बाहर निालना हो जायगा—अब और क्या क्या जाय ?

इस तरह एक दिन बादाम, पिसता, चिरौजी, इलायची, जाफ़रान, शकर, सतरे और अनारों का सौदा कर लाये, दूध, रबड़ी, बालाई लाये, कुल्फिया धोयी, कढाव चढाया । उन्नीसवीं सदी में उस्तादों की चिलमें भर-भर के सीखे हुए हुनर के हाथ रच-रचकर दिखलाये । फिर हाजी बुलाकी मियाँ की तजुबेकार बीवी उम्र भर के सधे हाथों से डले में कुल्फियाँ सजाने बैठी । बरफ़ भर कर हाँडी हिलायी । तब तक हाजी बुलाकी मियाँ ने पुराने वक्तों में रईसों-नवाबों और अंग्रेज-हिन्दुस्तानी हाकिमों से मिले सार्टीफ़िकेटों का रजिस्टर निकाला । यह

चमड़े का रजिस्टर वजीरे ने मरने के कुछ ही दिनों पहले कानपुर से पिचहत्तर रुपए में बनवाया था। हर पुस्त पर दो सार्टीफिकेट चमड़े के फ्रेम में मढ़ दिये। उसमें न टूटने वाले कागजी काँच भी जड़े हैं। अब्बा को अपने ये सार्टीफिकेट बहुत प्यारे हैं, इसलिए वजीरे यह कीमती रजिस्टर बनवा कर लाया था। हाजी उस दिन फूले न समाये थे, आज उस दिन को रोये। फिर अपने को सँभाला, कहीं बूढ़ी न देखले। उजला कुरता, चूड़ीदार पाजामा और टोपी पहनी। मजदूर को बुलाया, डला उसके सिर ढादा और करीब सत्रह-अठारह बरसो के बाद अल्लाह का नाम लेकर कुल्फियाँ बेचने निकले। इस बार बूढ़े-बूढ़ी दोनों ही परदे की ओट में एक दूसरे की आँखों को आँसुओं के हमले से न बचा सके। दुलहिन भी रो पड़ी। उसकी सिसकी सुनकर हाजी बुलाकी तेजी से बाहर चले आये। गली से बाहर आकर नखाम-बाजार में पहली आवाज लगी। 'कुल्फी मलाई की बरफ !' गला भर-भर आया।

दूसरी आवाज में ही बुलाकी मियाँ ने अपने आपको सँभाल लिया। वह इसान ही क्या जो मुसीबत न भेल सके। घन्टे के हिसाब से एक इक्का तय किया और उम्र भर के बरते हुये बाजार को छोड़ कर हजरतगज, जापलिंग रोड और पचबंगलियों की तरफ चले। हिन्दुस्तान को आजादी बस मिलने वाली ही थी। नया दौर शुरू हो चुका था। एक आला हाकिमेजमाना के वालिद बुजुर्गवार का दिया हुआ सार्टीफिकेट भी उनके रजिस्टर में मौजूद था। उन्हीं की कोठी का नम्बर पूछते-पूछते जा पहुँचे। इक्का कोठी से बाहर ही खड़ा करवाया और रजिस्टर लिये अदर गये। अर्दली से पूछा तो मालूम हुआ कि साहब पीछे वाले बगीचे में फुरसत से बैठे हैं। अर्दली को दुआएँ दी और कहा कि जरा ये खत हुजूर की खिदमत में पेश कर दो, मेरे बुढ़ापे पे तरस खाओ। अर्दली को रजिस्टर खोल कर दिया और खत

पर हाथ रख कर बतला भी दिया । हाकिम-जमाना बाप की लिखावट बरसों बाद अचानक देखकर बहुत खुश हुए, रजिस्टर के दूसरे सर्टीफिकेट पढने लगे, फिर बुलाकी मियाँ को बुलवा लिया ।

हाजी बुलाकी मियाँ महज खालिम माल से ही नहीं बल्कि अपनी बातों और अदब-कायदे से भी ग्राहकों को खुश करते हैं । हाकिम-जमाना, उनकी बेगम साहबा और दोनों जवान बेटियों के हाथ में तश्तरियाँ पहुँची नहीं कि हाजी बुलाकी ले उड़े : “कुल्फी में हुजूर दूध आँटाने और शकर मिलाने में ही सिपत होती है । कुल्फी की तारीफ तो तब है जब कि यहाँ खोली जाय और बनारसी बाग में जाकर खायी जाय । इतनी देर में अगर कुल्फी गल जाय तो फिर हुजूर वह शौकोनो के खाने काबिल नहीं । और बात सरकार यही तक नहीं, कुल्फी जमाने के फेर में अगर इतनी बरफ डाल दी कि खाने वाले के दाँत गले और जबान ठिठुरी तो फिर हुजूर सिपत क्या रही । आजकल के कुल्फी वाले लखनऊ के पुराने हुनर को नहीं जानते । हमारे उस्ताद ने सिखाया था कि अव्वल तो ये समझो कि कुल्फी में तरावट किस चीज की है, बरफ की या दूध, बालाई, रबड़ी, फलों, मेवों की । यही तो पकड़ की बात है बेगम साहबा, अल्लाह आप सब को जीता रखे । माल को हुजूर तरावट इतनी ही देनी चाहिये कि उस पर से मौसमे-गर्मी का असर हट जाय । अगर दाँत गले तो परखैया परखेगा क्या ?”

पढी-लिखी लड़कियों और हाकिमेआला पर बातों का असर होने लगा । बुलाकी मियाँ ने लड़कियों की ओर मुखातिब होकर सुनाया . “आपके जन्नत-नशी दादाजान को खुश करना हर एक के बस की बात न थी, हुजूर मेरी बात के गवाह होंगे । आपके दादाजान एक बार छोटे लाट साहब के यहाँ खाना खाने गये थे । वहाँ

मुर्गमुसल्लम की बड़ी तारीफ हो रही थी। कई और अंग्रेज हाकिम थे। शहर के कुछ रईस नवाब भी थे। सभी लाट साहब के बावर्ची के लाम बाँध चले। आपके दादाजान खामोश बैठे रहे। लाट साहब बोले कि नवाब साहब आपने तारीफ नहीं की। आपके दादाजान ने फ़रमाया कि हुजूर तारीफ के काबिल कोई चीज तो हो। फिर उन्होंने अपने यहाँ सबको दावत दी। साहबजादियों, मेरी बात के चश्मदीद गवाह हमारे सरकार यहां तशरीफ़-फर्मा हैं। जहाँ तक मुझे ध्यान है हुजूर उस वक़्त कोई दस या ग्यारह साल के रहे होंगे।.....”

इसके बाद हाकिम-ज़माना और उनका खानदान हाजी बुलाकी मियाँ का अजमरेनौ सरपरस्त हो गया। फिर कोई शानदार-कोठी बँगले वाला हाजी बुलाकी की कुल्फियों से महरूम न रहा। हाजी बुलाकी की कुल्फी और निमिष का शुमार भी लखनऊ के कलचर में हो गया। विदेशी महमानों को लखनऊ आने पर चिकन के कुरते, दुपलिया टोपी, रूमाल और साड़ियाँ, मिट्टी के खिलौने और मशहूर इत्रों के तोहफे तो दिये ही जाते थे, हाजी बुलाकी की कुल्फी या सर्दियों में निमिष भी खिलायी जाने लगी। अंग्रेजी के अखबार वालों ने उनकी तस्वीरें तक छापी। सालभर में हाजी साहब का कारबार चल निकला। गो पहले की आमदनी के मुकाबले में अब चौथाई भी न होती थी क्योंकि इनाम-इकराम देने वाले रईस अब नहीं रहे, पर ज़माने को देखते हुए हाजी साहब की रोजी सध गई। मुनाफे के लालच में माल निखालिस न किया, इज्जत और नाम पर डटे रहे। धीरे-धीरे दो पोतो को हाकिम-ज़माना की बदौलत मुस्तकिल चपरासियों में भरनी करवाया। मुहल्ले-पड़ोस और रिश्तेदारों के कई लड़कों को छोटे-मोटे काम दिलाये। बड़ी इज्ज़त बढ़ गई। खुदा का शुक्र है बूढ़ी जिन्दा है, बहू है, बड़े पोते की बहू है। अल्लाह के फजलो-करम से उसके आगे भी दो बच्चे हैं। छोटे पोते की शादी भी पारसाल

कर दी मगर वह लड़की बड़ी कल्लेदराज है। सुखचैन के चाँद में बस यही एक गहन लग गया है वरना हाजी बुलाकी अब अपना ग़म भूल चुके हैं।

एक दिन किसी वक़्त की नामी नाचने वाली मुश्तरीबाई का आदमी उन्हें बुलाने आया। हाजी दोपहर के वक़्त उसके यहाँ गये। उन्होंने मुश्तरी को बच्ची से जवान और बूढ़ी होते देखा था। उसका ज़माना देखा था कि रईसों-नवाबों के पलक-पाँवड़ो पर चलती थी। अब भी पुरानी लाखों की माया है मगर ज़माना अब तवायफ़ो का नहीं रहा। लड़कियों को बी० ए०, एम० ए० पास कराया है मगर अब गाड़ी आगे नहीं चलती। दरअसल मुश्तरी चाहती है कि दोनों की कहीं शादियाँ कर दे। यही नामुमकिन लगता है। हार कर दोनों को आदाब-तहज़ीब सिखाई और थोड़ी-बहुत नाच और गाने की तालीम भी दिलवा दी है। कचोट लड़कियों के जी में भी है मुश्तरी के मन में भी। आजकल सहारनपुर का एक रईसजादा दोनो लड़कियों का नया-नया दोस्त हुआ है। उसे शादी करने से एतराज़ नहीं क्योंकि उसकी माँ एक योरोपियन नर्स थी, जिसे उसके वालिद ने मुसलमान बनाकर अपनी क़ानूनी बीवी बनाया था। वह लड़का जब लखनऊ आता है तो फलों-फ़लों अफसर के घर मेहमान होता है। उनके यहाँ हाजी की निमिष खा चुका है, हाजी को जानता है। मुश्तरी हाजी बुलाकी की बातों के कमाल को जानती है। बाप की तरह उनके पैर पकड़कर कहा, “उस लड़के को अपने शीशे में उतार ले हाजी साहब तो बड़ा सबाब होगा। मैं जानती हूँ आयदा ज़माने में ये जिन्दगी इन लड़कियों से न सधेगी। अब इस पेशे में इज्जत नहीं रही। एक से पार पाऊँ तो दूसरी के हाथ पीले करने का रास्ता खुले।”

हाजी बुलाकी मान गये। दूसरे दिन शाम को मुश्तरी के यहाँ

जा पहुँचे । बड़ी आबभगत हुई । सहारनपुरी रईसज़ादा वहाँ मौजूद था, दोनों लड़कियाँ तो थी ही ।

हाजी ने डले में हाथ डालते हुए कहा : “छोटे सरकार, खाना-पहनना और इश्क़ करना यों तो परिन्दे-दरिन्दे तक जानते हैं, मगर इनमें तमीज रखने और हजार पते छानकर इनकी खूबी और अस्लियत पहचानने की कूबत अल्लाहताला ने सिरिफ़ इसान को ही अता फ़रमायी है । वो भी हर एक को नगीब नहीं । आपको अपने लड़कपन का हाल सुनाता हूँ । कोई सोलह-सत्रह बरस की उमर होगी मेरी । उस्ताद के साथ जाया करता था । एक बहुत बड़े ताल्लुकेदार थे । लम्बा-चौड़ा डील-डौल, गोरा सुर्खाबी बदन और उनकी बड़ी-बड़ी आँखें हसीन नाजनियों के लिये चुम्बक थी । आला ईरानी खानदान के, पुश्त दर पुश्त से पोतडो के रईस थे । मगर आम रईसों की तरह भोले-भाले न थे । उनके दो आँखें ऊपर थी तो चार भीतर थीं । सबका राज़ लेकर किसी को अपना राज़ न देते थे । अपने जमाने के पक्के खिलाड़ी थे । सरकार, हजारों ने घेरा उन्हे, सैकड़ों ने रिझाया, जाल-कपे डाले मगर जिस तवायफ़ का मैं जिकर कर रहा हूँ वह अपने जमाने की नामी और हसीन थी । दिल में तमन्ना रख कर भी उसने कभी मुँह से कुछ न कहा । नवाब साहब उसकी खिदमतों को समझते रहे । जब खूब परख लिया तो उसे निहाल भी कर दिया । बाकी सब मुँह देखती ही रह गयी । फिर ऐसा भी वक़्त आया कि नवाब साहब अपने चचा से मुकदमा लड़कर अपनी कुल इस्टेट हाई-कोर्ट में हार गये । तब उस तवायफ़ ने कहा कि जानेमन, तुम हो मेरे, ये जेवर, दौलत और जायदाद मेरी नहीं है । इससे लन्दन वाली अदालत तक मुकदमा लड़ो और सुखरूई हासिल करो । यही हुआ भी । नवाब साहब फिर मालामाल हो गये । बाद में नवाब साहब ने उस तवायफ़ से पूछा कि तुमने मुझ में ऐसा क्या देख लिया जो

औरों की नज़र में न पड़ा। तवायफ बोली : “मैंने देखा कि तुम उतावले नहीं बल्कि पारखी हो और इन्साफ-पसन्द हो। बस इसके सिवा फिर कुछ देखने को नहीं रहा।” इस पर नवाब साहब ने उससे कहा, “सैलाबे-इश्क अब अपनी हद पर है। अब मैं तुम्हें अपनी नौकर तवायफ की हैसियत से नहीं देख पाता। तुम मेरी मलिका हो।” बाकायदा हुजूर निकाह पढवाकर उसे अपने महलो में ले गये। तो इश्क इसे कहते हैं। हर चीज हुजूर समझदारी माँगती है। अब कुल्फियों को ही ले लीजिए—एक-एक ठण्डा रेशा मुँह की गर्मी पाते ही पहले तो खिले और फिर धीरे-धीरे घुलता जाय। ज्यों-ज्यों घुले त्यों-त्यों मिठास बढ़ती जाय। जो खुशबू या जो मसाले डाले हो वे अपनी जगह पर बोले। यही मजा इश्क का भी है। सरकार का रुतबा आला है मगर उम्र में हुजूर मेरे बच्चों के बच्चे के बराबर हैं। मेरी बातें आजमा देखियेगा।”

हुजूर पर हाजी की बातों का मुरुर गँठने लगा। हाजी बुलाकी कुल्फियाँ खिलाते चले। लडकियों और मुश्तरी की तागीफ करते चले, “लडकियाँ रतन हैं मगर खुदा के इन्साफ से जिस पेशे में जनम लिया है उसमें बेचारियों को बेकुसूर घुटना होगा। कहाँ तो ये पढी लिखी तहजीबयाफ़ता लडकियाँ, और कहाँ आज के ज़माने का दोजख !”

“हुजूर, यह मुश्तरी बड़ी नेक लड़की है। इसने अपना जमाना देखा है। मगर मैं इसके मुँह पर कहता हूँ कि अभी तो लडकियों का मुँह देख कर इस फिराक में है कि इनकी शादियाँ हो जायँ। मगर, खुदा मेरी इन बच्चियों को हर खतरे से बचाये, महज बात के तौर पर ही कह रहा हूँ कि बाद में हार कर यही मुश्तरी लडकियों से कहेगी कि पेशा करो, यारों को ठगो और अगर मेरे कहे मुताबिक

तुम लोग नहीं करोगी तो घर से निकलो। अरे हुजूर भूठ नहीं कहता, अपनी लड़कियों के हक में इन नायकाओं से बढ़कर कोई बुरा नहीं होता। रुपये की लूट के पीछे दीवानी ये और कुछ भी नहीं सोचती। आपको एक किस्सा सुनाता हूँ गरीबपरवर। एक नौजवान रईस थे। एक तवायफ़ से उनका दिल मिल गया। उसे निहाल कर दिया। मगर नायका का पेट इतने से ही न भरा। एक और बूढ़े भोंदू रईस को भी फँसा लिया। लड़की लाख कहे कि अम्मा मुझ से बेवफ़ाई न कराओ मगर अम्मा झिड़क-झिड़क दें। कहें कि ऐसा सदा से होता आया है। खैर हुजूर, होते करते एक दिन नौजवान रईस को भी पता चल गया। वह चार गुण्डों को लेकर उसके कोठे पर चढ़ आया। तवायफ़ की नाक काटी, बूढ़े की तोंद में करौली धुपी। बड़ा बावेला, तोबातिल्ला मचा। खैर, किस्सा ख़त्म हुआ मगर बेचारी लड़की नाक कटने के बाद दीनो-दुनिया, किसी अरथ की न रही। बतलाइये भला उसका क्या कुसूर था जो ये सजा पायी। यही न कि तवायफ़ के घर पैदा हुई थी इसलिए अपने आशिक से शादी न कर सकी और अपनी नायका-अम्मा के बस में उसे रहना पड़ा। मैं ऐसी ऐसी सैकड़ों मिसालें दे सकता हूँ। इस बच्ची की सूरत देख कर तरस आता है। अब सरकार भी यह पेशा ख़त्म कर रही है। खुदा इन पर रहम करे।”

बातों का सिलसिला बढ़ाते रहे, और दो-तीन रोज़ में ही लड़का राजी हो गया। मुश्तरी अब हाजी बुलाकी के पाव पकड़ती है, कहती है, दूसरी की शादी भी करवा दो तब घर बैठकर खुदा का नाम लेना।

लेकिन अब एक मुश्तरी की लड़कियाँ ही नहीं, कई और भी हाजी साहब से नयी ज़िन्दगी माँगती हैं। हाजी दिल ही दिल में परेशान रहते हैं कि सबको कहाँ पार लगायें।

नज़ीर मियाँ

पहले तस्लीम करता हूँ उस रब्बुल-आलमीन अलख-निरजन को कि जिसके पास अब तलक रूसी-अमरीकी राकेट नहीं पहुँच पाये। हजार बार अनगिनत सिजदे उस साँईं सिरजनहार के नाम पर कि जिसने जगमग सितारो-जड़ा अनोखी आब व आनवाला ये अचभे के बच्चे-सा खल्क रचा, उसमें हिद-जैसा मुन्क मिरजा, उसमें माशूक की कनखियो-जैसी आडे-तिरछे बिछलने वाली बड़ी नाज़ों-अदावाली चचल, शोख, पतली कमर बल खाय की तस्वीर खँचती हुई जलपरी-सी गोमती नदी बनायी, उसके किनारे शहर लखनऊ बसाया, उसमें बाजार नखास आबाद किया और नखास में नज़ीर मियाँ को बेलगाम छोड़ दिया कि जिनका सिन उत्तर की ढैयाँ छू रहा है और दिल अब भी सत्रह की अगनाई में ही गिल्ली डडा खेलता है।

आज तक किसी ने न तो नज़ीर मियाँ की बोलती बन्द होते देखी है और न पैर ही थमते देखे हैं। इनका अपना कोई नहीं मगर ये सबके हैं। जिदगी बीत गयी, अपना कोई काम नहीं किया मगर गली के आठ-दस घरों के बडे मिया हैं। किसी दुल्हन, किसी बेटी ने बुलवाया कि नज़ीर मियाँ ये ला दीजिये और वो ला दीजिये, तो चौक, अमीनाबाद दौड़े जा रहे हैं, पुराने माशूको के आटा-दाल, गेहू-गोश्त ला रहे हैं। सब जनी कस्में दिला-दिला के कहती हैं कि नज़ीर मियाँ जल्दी लौट आइयेगा। सबको ये भी कस्में खा-खा कर यक्रीन दिलाते हैं कि जल्द लौट आऊँगा, मगर गली-सड़क में आते

ही बातों का नशा ऐसा चढ़ता है कि वक्त का ध्यान फिर किस मरदूद को रहता है ! गूली से बाहर आते ही दाहिनी ओर वाली बाजार की पाँच दुकानों के ये नवाब-बे-मुल्क हैं । वहाँ पचास काम निकल पड़ते हैं, पचास रोकने-टोकने वाले मिल जाते हैं । फिर दुलहने, बेटियाँ और माशूकाएँ इनके नाम पर भले भीखा करे, घड़ी देखा करें, कोसे, झु झलाये, मगर नजीर मियाँ बेबस हो जाते हैं । क्या करें ?

अभी परसाल की बात है । करामत हुसैन की लड़कियों ने अमीनाबाद से कोर्स की किताबें लाने को कहा । 'हाँ, अभी लाता हूँ, मैं चार दिन टल गये । अजरा ने इन्हें घेर कर आँखों में आँसू भर कर कहा कि बड़े मियाँ आज जरूर ले आइयेगा वरना कल स्कूल में मेरी बड़ी किरकिरी होगी । नजीर मियाँ कसद कर के निकले कि आज ले के ही लौटूँगा । लोगों से आमना-सामना बचाने की गरज से ही पिछवाड़े वाली गली से हो कर टाट-पट्टी, यहियागज नापते हुए नादानमहल रोड से बस पर सवार हुए । इस तरह अमीनाबाद पहुँच कर तसल्ली हुई कि चलो, अब किताबें खरीदते क्या देर लगती है ! किताबों की दुकान पर भीड़ में लाइन लगा कर खड़े हुए । पीछे एक जज साहब के अर्दली यारअली भी आ खड़े हुए । बिल्ले चपरास वाले हमउम्र से नजीर मियाँ जाने किये बगैर भना क्यों कर रह सकते थे ? थोड़ी देर में सब-कुछ पूछ डाला । मानूँ हूँ कि यारअली का एक लड़का तो सेक्रेटिरियट में चपरासी है मगर दूसरे का कहीं डौल नहीं बैठा । वो बड़ा हुनरमंद है । उसने एक ऐसा खास जरूरत का नायाब साबुन बनाया है कि चमड़ी जलती नहीं और असर जादू का-सा होता है । कई चीजें बनायी हैं । यारअली ने इस धंधे में फायदा देख कर पाँच सौ रुपया लगाया मगर अब वो फसा है क्योंकि लड़का बेचने का हुनर नहीं जानता । नजीर मियाँ छूटते ही बोले : मैं बेच दूँगा । परसो इतवार है । नखास में मेला लगता है ।

सौ टिकियाँ तो उसी दिन बेच दूँगा। तुम बस एक सैनबोट बनवा दो मुझे—तबीयत का।’

‘मगर सैनबोट बनवाने में भी मियाँ कुछ वक्त तो आखिर लगेगा ही और इतवार तो परसों है।’

नज़ीर मियाँ हस कर बोले : ‘अजी, आपने भी क्या फ़िक्र पाली है। मैं कहता हूँ, बिरादर, कि जरूरत के हिसाब से थैलियों का डान्स पुरोग्राम करवाते रहिए तो बारह घण्टे में चाँद को धरती पर उतार लाऊँगा। ये सैनबोट क्या चीज़ है। रुपये पच्चीस खर्च होंगे आपके। आर्ट कालिज के डिज़ैन पर एक हसीना की फोटो बनेगी उसमें। माशूक छाप साबुन की खातिर किसी माशूक की ही फोटो भी होनी चाहिये। मैं बनवा दूँगा। इतवार की सुबह आप उसे सिकंदर कलंदर आफ इंडिया की दुकान पर टगा पायेंगे। पच्चीस रुपये ये और दस-पाँच रुपये पत्नी-काग़ज वगैरा...’

‘अजी पैकिंग-बैकिंग सब सुपर फ्रैन किसिम की हुई है, पाँच सौ टिकियाँ बनी रखी है। मक्खीमार पौडर भी तैयार है।’

‘अजी, तब तो जनाब यारअली माहब, आप नज़ीर हुसैन को चुनौती दे रहे हैं। माशूक छाप साबुन और मक्खीमार पौडर बना के आपका लड़का बेकार रहे और वो भी इस खाकसार के रहते? अजी खुदा चाहेगा तो परसों ही आप के हाथ में मौँ नहीं तो पिछत्तार रुपये जरूर रख दूँगा। जो मुनासिब कमीशन हो वह दे दीजियेगा। चलिये अल्ला-अल्ला, ख़ैर-सल्ला। और यह तो एक दिन की बात हुई, जनाबेमन खुदा झूठ न बुलवाये, एक महीने में इनकम-टैक्सवाला तुम्हारे पीछे पीछे न दौड़ने लगे तो कहना। तुमने अभी हमें पहचाना नहीं है, अजीज़मन !’

दुबले-पतले मुनहने-से नज़ीर मियाँ हैं मगर उनके बदन

में बिजली दौड़ती है। जो बात कहते हैं वह उनकी आँखों में, चेहरे पर, हाथ-पैरों में, अजो-अजो में तस्वीर बन कर फड़क उठती है। ओठों की दोनों कोरों पर नीचे की ओर झुकती हुई कत्थे की दो लकीरें मानों पैदाइशी निशान-सी ही चेहरे का एक अंग बन गयी हैं। उनका पान से सदा फूला रहने वाला गाल और ओठों की ये लकीरें इनकम-टैक्सवाली बात कहते हुए आपनी शान जता कर इतमीनान दिलाने की अदा में कुछ यौ उचकी-विचकीं कि यारअली को हंसी आ गयी। वे बोले : 'तुम खूब मिले, उस्ताद। अमाँ रहते कहाँ हो ?'

'नखास में। वहाँ जिससे चाहे पूछ लीजिये। आपको हर कोई मेरी हिस्ट्री बतला देगा। जनाब आबिद हुसैन स हब मरहूम, डिप्टी कलक्टर खुदा जन्नत में भी सदा उनका रुतबा बुलद करे, मेरे वालिद थे। वालिदा मेरी यहाँ की मशहूर डेरेदार थी। उन्ही डिप्टी साहब ने एक मकान बनवा दिया था। उसी में सडक की तरफ दो दूकाने भी हैं। घर की एक कोठरी में पड़ रहता हू। बाकी मकान किराये पर उठा दिया है। दूकानों से भी किराया आता है। अकेले दम के लिए बहुत काफी है। मैं तो कहता हूँ, हुजूरेवाला, ऊपर वाले का शुकर है, आज तक किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया। इसी लिए कहता हूँ, भाईजान, जहाँ पाँच सौ फंसे हैं वहाँ पच्चीस-तीस और फंसा दो। न उबरे तो बीच चौराहे पर मेरा हाथ पकड़ लेना। मगर उसकी आपको जरूरत ही न पड़ेगी। अल्लाह चाहेगा तो परसों करिश्मा दिखला दूंगा।'

यारअली सोचने लगे, फिर दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा : 'आप मेरे घर पर तशरीफ ले चलिये। तकलीफ तो होगी, मिया, मगर वहाँ दोनों लड़के होंगे। सारा हेसनेस हो जायेगा।'

नज़ीर मियाँ ने जोश में आ कर कदम बढ़ा दिया। किताबों के लिए यारअली ने यह कह कर टाला, कि इस वक़्त भीड़ बहुत है, कल

सुबह आ कर ले जाऊ ना, तो नजीर मियाँ को भी शह मिल गयी । मन में अजरा का आँसू भरा चेहरा और बार-बार आज ही ला देने का इसरार तस्वीर की गूज बन कर समाया, चुभन भी हुई, मगर नजीर मियाँ ने फौरन ही अपने तई तसल्ली दी कि बस अभी लौट कर आता हूँ । बातें करने में भला कितनी देर लगती है । ये गया और वो आया ।

यारअली के घर में बातें करते और हुक्का-चाय पीते हुए वक़्त गुजर गया । वहाँ से यारअली के दूसरे लडके को साथ लेकर नखास में नवाबन के बेटे मुन्नेखाँ के घर पहुँचे और कहा: 'बरखुरदार, आज तुम्हारी सआदतमदी का इस्तहान है । मेरी तकदीर का सितारा परसों आसमान से उतर कर नखास में आ खड़ा हो जायगा । लोग उसका करिश्मा देखेंगे । तू बस जरा मेरे सितारे के उतरने के वास्ते सीढ़ी बना दे ।'

मुन्नेखाँ 'मगर चचा, अजी चचा, सुनिये तो' करते ही रह गये पर नजीर मियाँ से पार न पा सके । बोले: "ऐसी माशूक की फोटू बना दे बेटे कि 'नाजो अदाजो अदा गम्जाओ शोखी ओ हया—(औ') यक तरन्नूम के गिवा सब तेरी तस्वीर में' हो । तुरन्नूम की कमी मैं पूरी कर दूँगा । न हो तो नन्हो की लौडिया को सामने बुलवा के खड़ी कर ले । उसका एक हाथ कमर पर और दूसरे में माशूक छाप साबुन हो । आँखों में प्यासे प्याले दरसाना औ' होठों की मुस्कुराहट में दो बोतलों का नशा उडेल देना, समझे मियाँ ? औ' ओढ़ती हवा में बड़े माई-डियर किसिम से फरफराये बरखुरदार, समझे ? बस, मेरा काम बन जायगा । दो टिकियाँ साबुन की तुम्हे मुफ्त दिलवा दूँगा । अपनी ओर से नन्हो की लौडिया को प्रेजेंट कर देना ।''

यारअली के लड़के से दस रुपये एडवान्स दिलवाये। पाँच का नोट अपनी तरफ से मौज करने के लिए दिया। नन्हो की लौडिया बुलवायी गयी। नजीर मियाँ ने आप खड़े हो के तमाम हाव-भाव नैन-सैन बतलाये। बहरहाल, सनीचर की शाम को माशूक छाप साबुन का साइनबोर्ड बन कर तैयार हो गया। नीचे 'स्टाकिस्ट, कलंदर सिकदर आफ इंडिया, लखनऊ' भी लिखवा दिया गया।

कलंदर सिकदर की दूकान इनका खास अड्डा है। वे इन्ही के किरायेदार हैं। कलंदर सिकदर चार भाई थे। मुल्क के बंटवारे में दो पाकिस्तान चले गये तो नजीर मियाँ ने इन के नाम के आगे 'आफ इंडिया' जोड़ दिया। तब से उनकी पन्सारी की दूकान का नाम भी यही पड़ गया है। उनकी दूकान क्या है मानों रंग-बिरंगे साइनबोर्डों की नुमाइशगार है। तीन दर की पुरानी दूकान पर छोटे-बड़े सब मेल के करीब पंद्रह-सोलह साइनबोर्ड लटक रहे हैं। छोटे भाई सिकंदर मियाँ को इसका खब्त है, माल उसी कंपनी का बेचते हैं जो उन्हें तस्वीरोंवाला साइनबोर्ड देता है। पासिंग शो सिगरेट का टोपदार साहब, पहलवान छाप बीड़ी का पहलवान, लाइफवाय साबुन लगा कर नल के नीचे नहाता-मुमकुराता लौडा, एक सौ इकतीस नंबर की बीड़ी फूंकती और आँख मारती हुई हसीना, लंगूर छाप खिजाब का लंगूर, शरज की आर्ट के नायाब नमूने वहाँ लटके हुए हैं। इतवार की सुबह सात बजे सब साइनबोर्डों के ऊपर माशूक छाप साइनबोर्ड भी चढ़ गया।

इतवार का रोज़ अल्लाह मियाँ की तरफ से खास तौर पर नखास के लिए ही मुकर्रर किया गया है। उस दिन लखनऊ के तमाम अक्लमंद लोग, क्यूरियो-डीलर, गरीब शौकीन और देहाती लोग-लुगाइयाँ नखास में इस तरह अटाटूट भर जाते हैं गोया नखास दिल हो

और उसमें वे अरमानों की भीड़ बन कर समाये हुए हों। सुबह आठ बजे से ही भीड़ बढ़ने लगी, रौलचौल शुरू हुई। फुटपाथ की दूकान पर बिकने वाले मुर्गे अपनी पुरानी साथियों से आखिरी रोमान्स लड़ाने लगे। कबूतरो की गुटुरगूं और तोते, मैनों, तीतरों, लालों, बटेरों और चकोरों - तरह-तरह के पछियों की रगारग चहचहाहट ने धरती के उस टुकड़े का आसमान सिर पर उठा लिया और जब नन्हें परिन्दों से इतना बोझ सम्हल न सका तो नजीर मियाँ ने लाउडस्पीकर हाथ में लेकर माशूक छाप का नारा बुलद किया। भीड़ उनकी तरफ खिंचने लगी। सिकदर कलदर की दूकान के आगे टीन की कुर्मी पर खड़े हो कर नजीर मियाँ चहकने लगे: 'अहा-हा-हा-हा ? हाजरेन शायकीन, गुलदाम, गुलबदन जानेजहाँ कत्ताले आलम आशिकोमाशूक ! चले आइये, चले आइये। ए हजरात, यह वो नखास है जहाँ कभी घोड़े बिकते थे लेकिन अब लोगो का नसीबा बिकता है। जो खुशनमीब हैं वही नखास में आते हैं, सैकड़ों का माल टके-टके में ले जाते हैं। हजरात, ये वो नखास है कि जिमकी शान में फिरदौसी तक कह गया है कि 'अगर फिरदौस, बरख्ये जमीअस्त, नखास-अस्तो, नखासअस्तो, नखासअस्त।' देहली के बादशाह से जब लखनऊ की यह रौनक देखी न गयी तो देहली के लाल किले में नखास की टक्कर का दीवाने खाम बनवाया और फिरदौसी के शेर में थोड़ा-सा फेर-फार कर वहाँ लिखवा दिया। मगर हजरात, जमाना जानता है, अजी में कहता हू कि हिस्ट्री-तवारीख गवाह है कि दीवाने-खास सूना हो गया मगर नखास में अब तक रौनक है। अजी लोग टके-टके में अनमोल किताबे यहाँ से ले जाते हैं। पालने और खाने के लिए मुर्गे और बकरे, चहकाने के लिये लालो-बुलबुलो-बटेर, रिभाने के लिए लहगा-ओढ़नी-टिकली-बिदी और रीभने के लिए माशूक छाप साबुन तक सब कुछ यहाँ सस्ते दामों में मिलता है। यहाँ जो चीज बिकने आती है वह खुदाई मेहर होती है और जो खरीदार आते हैं उन पर खुदा मेहरबान होता है।'

गरज कि दोपहर होते न होते नजीर मियाँ ने माशूक छाप साबुन की धूम मचा दी। दाइयाँ, मुगलानियाँ आती, बुर्के-वालियाँ नकाब उठाये या गिराये हुए गुजरती, देहातियों के रेले आते और उन्हें देखते ही नजीर मियाँ वो फ़बतियाँ कसते कि भीड़ में ठहाके उमड़ पड़ते, सुननेवालों का जी लहालोट हो जाता। ढाई बजे तक नजीर मियाँ ने निन्नानवे टिकियाँ बेच डाली, एक बी हैदरी के लिए बचा ली। इक्नोवाले मक्खीमार पाउडर के ग्यारह दर्जन पैकेट बेचे। जब पैसे दिए तो यारअली का लडका पाँच पकड़ने लगा। यारअली के लड़के को चौकस हिसाब दे और अपना कमीशन लेकर नजीर मियाँ पल भर भी न रुके, अजरा की कितावे लाने के वास्ते अमीनाबाद की ओर लपके। किताबों के साथ पाँच रुपये के रसगुल्ले अपनी तरफ से ले गए। लड़कियों को मना लिया।

इन्ही गलियों और इसी सड़क पर नजीर मियाँ बच्चे से बड़े मियाँ हुए हैं। नब्बू पानवाला और सिकदर कलदर तो इन्ही के किरायेदार हैं। उनका भला तो ये चाहते ही है। पड़ोस के हबीब चायवाले, यूसुफ हलवाई और सिरीकिशन साइकिलवाले के भी ये खास सगे हैं। यों इनका अड़्डा सिकदर कलदर की दूकान है मगर 'हबीब रेस्टूरेट' में भी बैठा करते हैं। सिकदर की दूकान पर सौदा-सुलुफ लेने के लिए आनेवाली औरतों-महरियों से छेड़छाड़ किया करते हैं। सड़क से गुजरते इक्के-ताँगों, रिक्शों पर जनानी सवारी देखी नहीं कि उधर ही ताकने लगे। अपने आपको हुस्न का जौहरी कहते हैं। इसी आदत की बदौलत दो-एक बार पिटे भी हैं।

नजीर मियाँ माशूकों के पीछे सदा बदहवास घूमे मगर अक्ल के पीछे लाठी लेकर न पड़े। पहुँच के बाहर की औरतों की बेबसी में सराहते जरूर है पर यहाँ बराबर की जोड़ होनी है वही बुढ़भस की लार टपकाते डोलते हैं। दिन-रात मजनों की तरह वस्ल और हिज्र

के गीत गाते हैं। मलाई के चप्पन, रयटी के दोने साबुन, तेल, इत्र, गजरे लिये खुशामद में दौड़ते हैं। जहाँ दाँव लग गया वहाँ महीने-दो महीने दिलोजान निसार किया, बुझते दिये की तेज लौ के मानिंद अपनी हविसों का खिलवाड़ किया, मुनामिब पैसे भी खर्च किये मगर फिर कहीं और बहके।

फिलहाल छह महीने से गुलाबवाडी के अग्लर नवाब की एक बेवा महरी हैदरी का कलमा पढ़ रहे हैं। खुद ही कहते हैं कि हैदरी जादूगरनी है वरना इतने दिनो तक कोई उन्हें बाँध नहीं सका। ये उसकी खिदमत में लगे रहते हैं और वह इनकी। हैदरी से भी पहली मुलाकात यही कलदर की दूकान पर ही हुई थी। पचाम-पचान का सिन मगर नाक-नक्का ऐसा मुडौल कि हुस्न के जौहरी नजीर मियाँ चुप न रह सके। धीरे-धीरे दूकान की पटरी पर उसके पास आ कर बैठ गये और प्यासी नजरो से निहारते हुए आशिकों की गुदगुनी बोली में पूछा : 'बी महरी, रहती कहाँ हो ?'

बी महरी भी कम रगीन न थी। इनकी नजरो का भाव ताका और मुस्कुरा कर कहा : 'इसी जमाने में, ओर कहाँ रहूंगी ?'

नजीर मियाँ फड़क उठे, बोले : 'तुम्हारा जमाना तो इशा-अल्लाह अब आयेगा। नजरबद्दूर, अभी तो खिलती कली हो।'

'ऐ वाह मियाँ, नजर बड़ी तेज है। दूर की देखते हो। जरा कबर में लटकते अपने पाँवो को भी निहार लो।'

'अमाँ वहाँ तो तुम्हें देखने के पहले देखते ही थे मगर अब तुम इन्हें सुबू-शाम कूचये-जानाँ में गश्त लगाते देखोगी। लाओ मैं पहुँचा दूँगा। मेरे रहते भला तुम बोझ उठाओगी ? कहते हुए गठरी उठा ली और आगे बढ़े। बी महरी तेज हुई, तेजी से लपकी, गठड़ी छीनने लगीं। उधर से हबीब ने तालिया बजायी, 'चचा ले भागे।' आसपास

लोगो के ठहाके पड़े। बी महरी के अघेड़ चेहरे पर शर्म की लहर यो दौड़ी मानो तेज हवा के भोके से पके धान का खेत लहराया हो। बड़े मियाँ उस अदा पर रीझ-रीझ उठे। प्यासी नज़ारो से देखते, हाथ से सामान देते हुए बी महरी का हाथ छू कर खोयी हुई मुस्कुराहट के साथ बोले : 'ये सामनेवाला मकान तुम्हारा ही है ?'

बी महरी बढ चली, नजीर मियाँ साथ-साथ बाते करते चले : 'जब से इटायेवाली गुलशब्बो इसमें रहने लगी है तब से पिछत्तार मकान के आते हैं, बीस कलदर वाली दूकान के आते हैं और दस नब्बन देता है। एक सौ पाँच किराये के और बीस-पच्चीस और पीट लेता हू। न कोई आल, न आलाद, न जोरू, न जाँता, न कोई शौक। क्या कहें, पचाम हजार की जायदाद है और ये दिल है--हम हथेली पे लिये-लिये घूमते हैं मगर कोई दिल का नाज उठाने वाली ही न मिली। यों माल हड़पने के लिए चोचले सब दिखाती हैं। अब तुम्ही इन्साफ करो बी महरी कि हम क्या कोई गौरवे हैं। अरे, अब लौड-पन भी नहीं रहा कि धोखा खाते फिरे। बकौल कसे 'उन्हें भी जोशे-उल्फन हो तो लुत्फ उट्टे मुहब्बत का, हमी दिन-रात गर तड़पे तां फिर इसमें मजा क्या है ?'

यो ही अपनी सुनाते हुए बी महरी के साथ-साथ उनके मालिक की ड्योढी तक पहुँच गये। देखते ही बोले : 'अरुखाह, नवाब अरुनर साहब की कोठी में काम करती हो ! अमाँ तब तो तुम अपने घर की ही निकली। अरे-अरे, मुनो तो बी महरी, नवाब साहब अगर दीवान-खाने में तशरीफ रखते हो तो जई मेरे आने की इत्तिला करना कहना नखासवाले नजीर मियाँ आये हैं। अमाँ, पूरी बात तो सुन लो। तुम तो खुदा की कसम दिल तां उड़ाती ही हो मगर आप भी उड़ती हो।'

‘ऐ तो और क्या करे, तुम तो हो नाठे निगोड़े औ यहाँ पचासों काम पड़े हैं।’

नजीर मियाँ ने एक सर्द आह खीची, कहने लगे : ‘ठहरे है हम तो मुजरिम टुक प्यार कर के तुमको; तुमसे भी कोई पूछे तुम क्यों हुए पियारे’। जरी अपना नाम तो बतला दो, तुम्हे हमारी जान की क्रसम।’

इसके बाद मलाई के चप्पन, इतरफुलेल, कधी-आईना, यहाँ तक कि माशूक छाप साबुन की सौवी टिकिया भी बी हैदरी की खिदमत में पहुँची। बारे महीना पचीस रोज के चक्करो ने बी हैदरी के बूढ़े दिल में भी इश्क की लहरे उठा दी। तबसे वही उनकी इश्किया जिदगी का इकलौता सहारा है। ऐसे बस में हुए है कि जान सौप दी पर माल नहीं सौपा। हाँ, लालच बढ़ाते है। एकाध जेवर दे भी दिया है। कभी-कभी यह इरादा भी जाहिर करते है कि हैदरी अगर नौकरी छोड़ दे तो वह उसे अपने घर में डाल लेगे और आखिरी वक़्त में जेवर-जायदाद भी उसी के नाम लिख जायेगे। मगर यो तो नज़ार मियाँ पहले भी कई बार सोच चुके हैं। बी हैदरी बाद आगे कब और किस-किस के लिये फिर ये नेक इरादे जागेगे, इसे सिर्फ ऊपर वाला ही जानता है।

दफ़ीने की खुदाई

साइस का जमाना है। आप जादू टोने पर यक़ीन नहीं करेंगे। मैं भी नहीं करता। मगर आपसे सच कहता हूँ कि पिछले महीने डेढ़ महीने के अन्दर मैंने जो देखा है, वह अगर सच नहीं तो सच से सवा सोलह आना बढ़कर जरूर है।

हुआ यह कि लखनऊ में शाही खजाना खुदने लगा। हमारे मुहल्ले में, अजी शहर के कोने-कोने में हर शख्स जिसके पास भी दादालाई जायदाद थी, यही सोचने लगा कि हो न हो हमारे घर में भी करोड़ नहीं तो लाख अशफ़ियों का घड़ा जरूर गड़ा है। घर-घर जन्मपत्रियाँ खुलने लगी, पण्डित-मौलवियों के घरों की चौखटें अपने-अपने घरों के दफ़ीनों का हाल जानने वालों की आवाजाही में घिस गयी, सरकार का दफ़तर गड़ा धन खुदवाने वालों की अजियों से पट गया.....और हम बैठे-बैठे मजा लेते रहे। शहर दफ़ीनों की अफ़-वाहों से दबा जा रहा था। आये दिन दो-चार हम भी लाद देते थे।

मगर एक दिन हम पर भी लद गयी जनाब ! सुबह जो आँख खुली तो घर की लक्ष्मी काफ़ी का प्याला लिये खड़ी मुस्करा रही थी। यहाँ टुक बात का तार तोड़कर एक बात मतलब की कह दूँ; अगर कभी आप मुझे अपने घर चाय पीने के लिए बुलाये और आपको अक्मर बुलाना भी चाहिए, तो चाय का मुहावरा बरकरार रखते हुए भी काफ़ी ही पिलाइयेगा। आपकी दुआ से मैं अस्सरे नौ इंटलेक्चुअल हो गया हूँ और चायवाली इंटलेक्चुअलता अब पुरानी पड़

गई है। अच्छा तो खैर, काफी की एक चुस्की से दिमाग के दड़बों में सोये हुए इज्जों में कबूतर फड़फड़ाने लगे, मगर तब तक घरवाली बड़े नाजोअंदाज से मुस्कुरा कर बोली, “सुनो, मुझे एक सपना हुआ है।”

मैंने कुछ न कहा, मन में खीझ कर सोचा कि इन घरवालियों की कौम भी अजीब है कि इन्हें हर वक्त कुछ न कुछ होता ही रहना है।.....कभी सिर में दर्द होता है, तो कभी पेट में दर्द होता है, कभी औलाद होती है और कभी कुछ नहीं तो सपना ही हो जाता है। बहरहाल, गृहलक्ष्मी ने फिर मिठास घोली, कहा “परसों रात में मैंने क्या देखा कि अपने घर के सामने वाले पीपल से सफेद कपड़े पहने हुए सफेद बुराक दाढ़ी वाले एक सैयद बाबा अपने घर की छत पर उतरे, नीचे आये और आकर सीधे भण्डारघर वाली कोठगी में घुम गये। फिर मुझसे कहा कि इसके नीचे ताबे के दो देग गड़े हैं, एक छोटा है, उसमें चार लाख के जवाहरात हैं और जो बड़ा है उसमें एक लाख मोहरे हैं, ये तेरे भाग की है, तू ले ले। फिर सैयद बाबा ने मेरे सिर पर हाथ फेरा और बोले कि जा, तेरा घर राजमहल बन जायेगा। बस फिर मेरी आँख खुल गई, देखा तो सबेरा हो गया था।”

मैंने कहा, “बस बस रहने दो, जान पड़ता है, तुम्हे भी शहर की हवा लग गयी है। भला इन शप्पों में क्या धरा है?”

“चलो चलो, रहने दो,” ये बोली, “तुम्हे तो जितनी काम की बातें होती हैं, उनमें शप्प ही सूझती है। अरे कल मैंने पाटे नाले के एक मौलवी को बुलाकर पूछा था। उन्होंने कहा भोर का सपना, फिर सैयद बाबा की बात कभी झूठ हो सकती है?”

मैं कुछ देर तक तो उनका मजाक उड़ाता रहा, पर जब मेरी घरवाली ने यह बतलाया, मौलवी साहब ने मुझी के अंगूठे के नाखून

पर काजल लगाकर तस्वीह फेरी और कहा कि अगर दफ़ीना हो तो इस पर उसकी फोटो बन जाय और बन भी गई, तब यह हाल सुन कर मेरा जी भी जरा कुनमुनाया। मैंने कहा कि अच्छा आज उन्हें बुलवाओ। मैं भी देखूँ।

बड़े-बड़े बुलावों पर मौलवी पीरबख्श साहब तशरीफ लाये। सुरमगी आँखें, उन पर सुनहरा चश्मा, हिताई दाढ़ी, सब्ज अमामा, सब्ज चोगा, दोनों हाथों में चाँदी की अंगूठियाँ और लोहे के छल्ले। मुझसे फरमाया, “आप अंग्रेजीदाँ लोग इन बातों पर यकीन नहीं करते। और मैं कहता हूँ कि बस यही……आप अपने हाथों से अपने पैरों पर कुल्हाड़ा मार लेते हैं, तकदीर को मिकन्दर से चुकन्दर बना देते हैं। आज मैं आपको यह करिश्मा दिखनाऊंगा कि आप भी कहेंगे कि हाँ, अल्लाहवाले से वास्ता पड़ा था।”

यह कहते ही जनाब, वह चट में उठे, जेब से रूमाल निकाला, उसमें टीन की दम डिब्बियाँ बन्धी हुई थी। बोले, “इसमें खुदा की खुदाई भरी हुई है। मात डिब्बियों में मात आममानो को अपनी आँखों से देखने के लिये सुरमें रखे हैं, आठवी में वह सुरमा है कि लगाकर अपनी छत पर बैठ जाइये और तमाम दुनिया का हाल देखिये। डिब्बी नम्बर नौ के सुरमें में वह तासीर है कि अगर लगाकर अपनी माशूका (बीबी नहीं) के सामने खड़े हो जाइये तो उसके दिल का नजारा दिखलाई पड़े और दुश्मन के सामने खड़े हो जाइये तो उसके दिल का भेद लीजिए। और डिब्बी नम्बर दस में उल्लू की आँख का सुरमा है, जिसे लगाने ही आप को धरती में गड़ी दौलत नज़र आयेगी।”

हम चित तो खैर हो नहीं सकते, क्योंकि इटैलेक्चुअल हैं—मगर फलैट ज़रूर हो गये। जी में आया कि डिब्बी नौ का सुरमा लगाकर पहले अपनी……मगर घरवाली सामने थी, इसलिए डिब्बी

नम्बर आठ का सुरमा आंज कर यू० एन० ओ० की पचायत देखने की इच्छा की। मगर मेरी गृहलक्ष्मी उल्लू वाले सुरमें पर अड़ गयी। मौलवी साहब ने पीतल की छड़ निकाली जिस के एक सिरे पर पजा बना था और दूसरी ओर बागीक सुरमें की सलाई जैसी नोक थी। कुछ पढ़कर मौलवी साहब ने डिब्बी नम्बर दस पर तीन बार पजा फेरा, डिब्बी खोली और फिर सुरमा सलाई लेकर मेरे नजदीक इस तरह खड़े हुए जैसे नाई हजामत बनाने के लिए उस्तरा लेकर खड़ा होता है।

आपसे हर “इज्म” की कमम खाकर कहता हूँ, उल्लू का सुरमा वह जादू है जो मिर चढ़कर बोलता है। सबसे पहले तो अपनी किताबों की अलमारी के पीछे वाली दीवार में नजर गई। पलस्तर और लखौरी के दो गज अन्दर एक सेठानी जी की प्लेटिनम की कढ़े आदम मूर्ति रखी थी, वह अपनी गोद में एक लल्ला लिये बैठी थी।

मौलवी साहब ने उसे देखकर फिर पीतल के पजे को हवा में कुछ आड़ा-तिरछा घुमाया। एक बार आममान की ओर नजर डाली, फिर अपने खुदा के हिनाई तूर पर उगलियों से कङ्घी करते हुए बोले, “ऊपर वाले का कहना है कि जिस सेठानी की यह सूरत है वह ईस्वी ४८० में नव्वाब नसीरुद्दीन हैदर के नगर सेठ की बीबी थी, उसने जब लडका गोद लिया था, तब लखनऊ के एक कुम्हार से यह मूरत ढलवाई थी।”

मेरी आँखों में उल्लू की आँखों का सुरमा अजा था। गड़ा धन देखा रहा था। मैंने सोचा कम से कम ढाई मन की तो यह मूर्ति होगी ही। प्लेटिनम की दुनिया में यो भी बेहद कमी है इस मूर्ति को गलवाकर दो करोड़ पैदा कर लूँगा। फिर तो बस क्या अर्ज करूँ, दिल बासो उछलने लगा, फिर देगचे देखे। अजी करोड़ों की दौलत ! मन फूला न

समाया। सोचा जब इतनी दौलत पा लूंगा तो ठाठ से अपने महल में बैठकर प्रगतिवादी कवितायेँ रचा करूंगा।

दूसरे ही दिन मैंने मजदूर बुलवाकर दीवार खुदवानी शुरू की। दिन भर में पूरी दीवार खुद गयी, मगर प्लटिनम की नगर सेठानी न निकली। मैं बड़ा चकराया, दौड़ा मौलवी साहब के पास गया। वह डिब्बी नम्रदस का सुरमा लिये दौड़े आये। आज कर देखा तो कहने लगे कि “बल्लाह ऊपर वाले की कुदरत है। मूरत तो बाँई दीवार में सरक आई है।”

दूसरे दिन वह दीवार भी खुद गयी, तब पता लगा कि ऊपर वाले की कुदरत से मूर्ति छत की दसवीं धन्नी में बने हुए दीमकों के बिल में घुस गयी है।

मेरी घरवाली बोली, “लक्ष्मी चलती है पहले इसको किमी मे बधवाओ तब यह पकड़ में आयेगी।” मौलवी साहब ने एक परात में पानी मगवाया और दसवीं धन्नी में एक दीमक के बिल के नीचे उसे रखवा कर फिर उड़द के सात दाने फूँक कर मारे और कड़ककर कहा कि “थम जा।”

ऐ जनाब ऊपर वाले की कुदरत ! धन्नी इस जोर से फटी मानो नाइट्रोजन बम फटा हो। कमरे में उजाला ही उजाला फैल गया और धन्नी से एक औरत जिसका आधा धड़ लोमड़ी का था, परात के पानी में छप से कूदी और बड़े जोर से गुर्राती हुई हम लोगों की ओर दौड़ी।

आप से सही अर्ज करता हूँ बस, जान बचाते ही बनी किसी तरह। और दो करोड़ की लक्ष्मी घर से भाग गयी।

मेरी गृहलक्ष्मी ने कहा कि “इन मौलवी साहब से न बनेगा, महरी बतलाती थी कि कालीबाड़ी में आजकल एक बगाली पंडित

आया हुआ है, वो सार्तों विद्या जानता है। उसे कामरू-कमच्छा की देवी सिद्ध है।”

मौलवी साहब को सुनकर तैश आ गया, बोले, साहब मेरे पास भी इल्म है। मैं भी अपना हुनर दिखलाऊंगा।

दूसरे दिन से दो इल्मो की लड़ाई चली। एक तरफ मौलवी साहब बैठे, दूसरी ओर यत्राचार्य, तन्त्रतीर्थ, मन्त्र वाचस्पति पंडित पाँचकौड़ी ढोल।

मौलवी साहब ने अपनी नम्बर ३ की डिब्बी का सुरमा आँज कर फल्क नम्बर एक को देखा और फरमाया, “ऊपर वाले तेरी कुदरत। पहली ड्योढी पर जादू का ढोल बज रहा है। देख, मैं ये लैला, ये शीरी, ये हीर, और ये सोहिनी की चिट्ठी उंगलियों के नाखूनों का, इनके आशिकों के खून में भिगो कर मुसल्सल चालीस चाँदनी रातों में नैयार किया हुआ मफूफ फेकता हूँ, ऊपर वाले की मेहर से ढोल फट जायगा।”

यह कहके झोली से एक पुडिया निकाली और जो चुटकी फूँकी तो ऐसा मालूम हुआ कि जमीन से आसमान तक हजारों उड़न तश्तरियाँ उड़ रही हैं। पलक मारते ही दुनिया दहला देने वाला धमाका सुना। देखते ही देखते आसमान का पर्दा फट गया। स्टेज के सीन की तरह फटा और सामने ही, पहली ड्योढी पर ढोल बजता नजर आया। उड़न तश्तरियाँ ढोल पर यो टूटी गोया बाज टूटे हों।

इधर पंडित पाँच कौड़ी ने भी आकाशी ढोल का ठहाका लगाया और वह हजारों तश्तरियाँ ढोल में समाती चली गयी। ढोल बजता रहा।

अब ढोल मोशाय बोले, “अब बोलो ओस्ताद, अब हम दूसरा आकाश में जाना नाग।”

फिर सीन बदला, फिर बदला । हम सब ठगे से खड़े देखते ही रह गये । कभी मौलवी साहब कल्लू वीर को भेजते तो पड़ित जी चौसठ योगनियो में से एक को उसके पीछे छोड़ देते थे, भैरो, वरना-पीर, चडी, मु डी मसानी जाने कौन-कौन से देवता पीर आपस में भुगत गये । कभी ये शेर बने तो वे चूहा बनकर बिल में घुस जाय । तो फिर वह साँप बनकर इन्हें निगलने को झपटे और वह भैसा बन जाँय । अल्लमा-अल्लमा । मैं सोचने लगा कि जब जादू-टोनों की लड़ाई में ये करिश्मे हैं तो साँडटिफिक लड़ाई में खुदा जाने क्या हाल होगा । सोचता तो और भी बहुत कुछ, क्योंकि दो जादुई इल्मों के युद्ध ने दिमाग में इज्मो के कबूतर जगा दिये थे, मगर यह कि सोचने की फुरसत ही कहाँ थी भाई जान ।

पाँचकौड़ी जी एक मन्त्र पढ़ कर भेड़िया बने, पीरबरूश साहब चट से मुर्ग बन गये । भेड़िया पड़ित हसे, कहा, “ब्याटा आव फोशा । हाम तुमको आव येई जोर्न। में बाँध देता है ।” यह कहकर उन्होंने एक जवाकुसुम का फूल मुर्गे पर तान मारा ।

बेचारे पीर बरूश फिर बेबस मुर्ग ही बने रहे । घर से बाहर उड़ गये । एक कर्वाड़िये ने पकड़ लिया । शहर में एक और जगह खजाना खुद रहा था, वहाँ खजाना भाँपने के लिये एक मुर्ग की जरूरत थी । वहाँ के मौलवी साहब ने हमारे मौलवी साहब को मन्त्र पढ़ कर खजाने पर उड़ाया । जब खजाने पर पीर बरूश को किसी दूसरे जादूगर का मुर्गा बनकर उड़ना पड़ा तो बड़े फडफड़ाये । तभी झट से ऊपर वाले की मेहर से इन्हें एक मत्तर याद आया । याद आते ही इनकी रूह सिगरेट के धुएँ सी हवा में उड़ गई । मुर्ग की लाश गिर पड़ी । बेचारे खजाने वालों का सगुन बिगड़ गया ।

खैर साहब, मौलवी पीर बरूश फिर मेरे घर आ डटे, उस समय पाँचकौड़ी जी हमारा खजाना खुदवाने का उपाय कर रहे थे ।

पीर बरूश गरजे, कहा, देखे, अब तू इसे क्योंकर खजाना दिसवाता है। देख मेरा जोर।” यह कहकर फूक मारी तो जमीन फट गई, दोनो देगे निकल आईं और आसमान की ओर उड़ चली। मौलवी साहब उनके साथ उड़े। ढोल पडित ने यह देखकर फेटा कसा और उड़े। उड़ते उड़ते दोनो चले जा रहे थे। कभी वो आगे तो कभी वह पीछे। कभी धन इनके साथ तो कभी उनके साथ...दो इल्मो की इस आसमानी लड़ाई के बीच में लक्ष्मी फुटबाल बन गई। तेजी इतनी कि पौने पाँच सेकेड में लखनऊ से कानपुर पहुँच गये।

मौलवी साहब ने इस बार दोनो देगे हथिया ली और उन्हें लेकर तेजी से उड़े, बीच में मेमोरियल वैल पड़ा। मौलवी साहब ने लपक कर दोनो देगे कुएँ में डाल दी। उसमें गदर में मारे गये अंग्रेजों के अनगिनत प्रेत हैं, जिन्होंने अब भी “विक्ट इडिया” नहीं किया।

मौलवी ने ठहाका लगाकर कहा—“हः हः अब कैसे पाओगे?”

ढोल बोले, “खैर कोई हरजा नेई। इसमें कुछ काल अवश्य लगेगा पर तुझको हाम शूश शॉप बोना देगा। मुर्गा जोन से तुम भूट गया, करोन कि मुर्गा बाँत है, परन्तु शूश-शॉप बाँत कम हाय।”

अब आपसे क्या अर्ज करू। कानपुर के मेमोरियल वैल से माल रोड पर आने वाला सूस-माँप हमारे बेचारे मौलवी साहब ही हैं, बेचारे अजायबघर में रखे गये।

ढोल उसकी दशा देख कर बोले, “एक मानूष को पोशु बोना कर हाम अच्छा नेई किया। अतः अब श्री तीर्थराज के शोगम की एक शूश को हॉम मानुष बनायगा।”

२६ अक्टूबर की रात को १२ बजे सगम पर तत्रथीर्थ पाच-कौडो ढोल एक सूस को मनुष्य बनायेगे। उन्होंने मुझे यह चमत्कार दिखलाने का वचन दिया है।

लंगूर का बच्चा

मुहल्ले में जब कुत्ते, बिल्ली, हिरन आदि तरह-तरह के जानवर पालने का शौक बढ़ा तो बच्चों के आग्रह से मैं भी एक लंगूर का बच्चा मोल ले आया। इस लंगूर के बच्चे ने इन्सानी बच्चों से करतब सीख कर अब वो तूफान उठाया है कि कुछ कहते सुनते नहीं बनता। लोग मुझे दोष देते हैं कि क्या जानवर पाला और मैं लोगों को दोष देता कि गली में तरह-तरह के जानवर पालने का फैशन ही क्यों चलाया।

सच पूछिये तो हमारे मुहल्ले में शेखी भरी लागडॉट फैलाने वाली एक इसपेक्टर महोदय की पत्नी हैं। ये इसपेक्टर साहब लगभग आठ-दस बरस पहले यहाँ ट्रान्सफर होकर आये थे। उस समय दोनों पति-पत्नी मरीहत्या से लगते थे, एकदम सीकसलाई, अकाल के कौआ जैसे थे और अब साढ़े तीन-तीन मने कोलतार के ड्रमों जैसे फूल कर अपने अधमने और दस सेरे कुप्पो जैसे दो बच्चों को लेकर लुढ़कते हैं। कुलजमा आठ नौ घरो की इस महलवाली गली में केवल इसपेक्टर साहब ही किरायेदार हैं। बाकी सबके पुश्तैनी घर हैं। जो आज की हैसियत के हिसाब से और भी बढ़ चढ़ या घट गये हैं। एक नामी गिरामी प्रोफेसर हैं, एक ठेकेदार, प्रेस मालिक, वकील साहब और पैसों वाली पवित्र अपवित्र विधवाओं की हवेलियाँ हैं। एक मैं हूँ, पत्रकार हूँ तीन सवा तीन सौ कमा लेता हूँ।

खैर यहाँ तक तो गली, पड़ोस का नक्शा बखान दिया अब टुक बात पर कान दीजिए ।

बात कुछ नहीं, वही घिसीपिटी मगर नित लाख नई बातें उठाती हैं : “आज तो हमारे यहाँ, काबुल का मेवा आया है ।—या—हमारे वो साढ़े सत्रा सौ रुपये का रेडियो ग्राम लाये है । या—वकील साहब के यहाँ तो हिन्दुस्तानी गलीचा है, निगोडा रंगी सुनली का बना है और हमारे यहाँ तो असली ईरानी गलीचा आया है ।—हमारी मोटर तुम्हारी मोटर से कीमती है ।—या हमारा अल्मेशियन कुत्ता तुम्हारे हिरन से तेज भागता है इत्यादि, इत्यादि । पैसों और ऊँची कीमतों की चढ़ा-ओढ़ में हम ही सबसे फिसड़्डी रहते थे । इसलिए हमारी श्रीमती और बच्चे हमसे बहुत अधिक सन्तुष्ट नहीं रह पाते ।

खैर जब गली भर में जानवर पल गये तो हम भी इस चढ़ा-ओढ़ में मीर बनने की नीयत से एक दिन नखास बाजार से एक लंगूर का बच्चा मोल ले आये । घर में हमने बच्चों के सामन उस लंगूर की तारीफ में वो-वो बातें कही कि रायबहादुर साहब के अल्मेशियन, प्रोफेसर साहब के बुलडाँग, वकील साहब की बकरियों और सेठ साहब की गायों तथा हिरन से भी ऊँचा साबित कर दिया । बच्चे बड़े खुश थे और लंगूर का बच्चा भी उन्हें पाकर बड़ा खुश । धीरे-धीरे लंगूर का बच्चा सचमुच ही मुहत्ते भर के बच्चों का सबसे बड़ा आकर्षक केन्द्र बन गया । मैं बड़ा प्रमत्त हुआ, जब कभी फुरसत मिलती उस लंगूर के बच्चे को सरकस का खेल सिखलाता था । बच्चों को इससे और भी उम्दा शगल मिल गया था । दिन भर उसके साथ नए-नए स्टण्ट खेला करते थे । लंगूर का बच्चा सबका लाडला और बड़ा चन्ट हो गया । कुछ लड़कों ने छत्ते के बाद वाली दो दीवालों की सकरी जगह पर उस लंगूर बच्चे को एक अनोखा सरकस

करना सिखा दिया। लड़कों में से कोई राहगीर बनकर दोनों दीवारों के बीच की राह पार करता और दूसरे लड़के के सकेत पर लंगूर एक दीवार से उछलकर टप्प से लड़के की खोपड़ी पर कूदता और वहाँ से छलाङ्ग मारकर दूसरी दीवाल पर। धीरे-धीरे वह लंगूर बच्चा इस करतब में ऐसा माहिर हो गया कि राह चलतो की खोपड़ी पर बिजली सा कूदता और बिजली सा ही दूसरी दीवाल पर छलाङ्ग मार जाता। लड़कों को बड़ा अच्छा खेल मिल गया। गाय, बैल, गधों पर लंगूर को कुदा कर उनकी घबराहट का तमाशा खूब देखा जाता है। एक दिन एक फकीर बड़ी भभूत-वभूत रमा के आया और लड़कों के छेड़ने पर उन्हें भस्म करने की धमकियाँ देने लगा। लड़को ने भी हमारे लंगूर को उन पर हुशका दिया। उस दिन गली में घूम-घूमकर लंगूर ने बाबा को ऐसा नाच नचाया कि लड़को को ही नहीं राह चलते बड़े-बूढ़ों को भी मजा आ गया।

खैर धीरे-धीरे नतीजा यह हुआ कि हमारी गली में डर के मारे तरकारी वालो, फल, मिठाई, खोचे वालो, फेनी वालो ने आना ही छोड़ दिया। हर एक को रोज की गिरस्ती का मामान घर बैठे मिलने में दिक्कत हो गयी तो शिकायतें फूटी। सदा की तरह पहल इसपेक्टराइन ने ही की। कहना शुरू किया : “रिपोर्टर साहब को और कोई जानवर नहीं मिला था तो गधा ही पाल लेते ये लंगूर क्यों पाला जो सबकी जान की सासत बन गया है।” हमारी पत्नी ने सुना तो बुरा मान गयी, कहा कि हम क्यों पाले गधा, मुहल्ले में एक ही काफी है, इसपेक्टराइन ने पाल तो रखा है।

बस इसके बाद से ही हमारे लंगूर को लेकर गुन खिलने लगे। संयोग की बात थी कि उन्ही दिनों हमारे लंगूर ने प्रोफेसर साहब को भी अपनी साइंस का कमाल दिखलाना आरम्भ किया। लड़को के

कहे के मुताबिक बात यों हुई कि एक दिन प्रोफेसर साहब ने हसी-हँसी में लगूर बच्चे की नाक अपनी घरेलू प्रयोगशाला की किसी तेज गंध वाली शीशी में घुसेड़ दी थी। लगूर बच्चा उसी दिन से उनका दुश्मन बन गया। जब वो टोप लगाकर गली में खण्डहर की दो दीवरिया के बीच से गुजरते तभी वह उनके टोप पर छुनाग मारता था। प्रोफेसर साहब सदा अपने दो-चार चेलो और मिलने वालो से घिर कर चलते थे। लगूर बच्चा अचूक निशाना साधकर उन्ही के टोप पर टपकता और बाद में उनका टोप उडाकर भी ले जाने लगा।

एक दिन प्रोफेसर साहब बड़े लाल पीले होकर मेरे यहाँ आए, पूछा “आप शरीफ है ?”

मैंने कहा, “आपके साथ रहता हूँ, चाहे जो समझ लीजिए।”

वे बोले “ये क्या टिमाकत है कि लगूर पाला है जनाब ने।”

मैंने कहा “आपके बुलडाँग से ज्यादा खूबसूरत है।”

“उसकी खूबसूरती आप ही देखिये। इसको फौरन से पेश्तर गली से हटाइये वरना मैं इसे शूट करवा दूँगा।” प्रोफेसर साहब बोले।

मैंने कहा “आप की मर्जी। मगर शूट कराने से पहले घर में भाभी जी से पूछ लीजियेगा क्योंकि लगूर हनुमान जी का अवतार होता है और वो उन्ही को पूजती है।”

प्रोफेसर साहब नाराज होकर चले गए। मैंने अपने लगूर को अब पट्टे जजीर में बांध कर रखना तो शुरू किया लेकिन न जाने कब लड़के आते और उसे खोल ले जाते।

एक दिन चान्दनी रात में वकील साहब हँसी खुशी हाथ में

चमेली की माला झुलाते दो दीवरिया के गलियारे से अपनी सेठानी के यहाँ जा रहे थे। लगूर को शायद चमकती हुई फूलमाला ने ही आकर्षित किया होगा। मगर उस दिन से उसने वकील साहब की खोपड़ी पर भी कूदना शुरू कर दिया। लगूर के भय से बेचारो का प्रेम पथ झूट गया।

अब रात और बढी। वकील साहब ने धमकी दी : “अखवार के रिपोर्टर है तो हुआ करे, मैं भी उनके घर में रोज संधे लगवाकर दम लूँगा।” मेरी पत्नी घबराई बोली चोरों का वकील है इससे रात मत मोल लो। खैर साहब, मैंने एक दिन एक बोरे में लगूर बच्चे को भरा और माइकिल पर लाद कर नदी के पार छोड़ आया। लेकिन वो मेरे पीछे-पीछे ही लौट पड़ा। मैं उसे मारने की धमकियाँ देकर भगाता मगर वो लौट-लौट आता।

लगूर का बच्चा अब भी गली में ही रहता है। हर घर के बच्चे को उससे न बोलने—न खेलने के आदेश है। ठेकेदार साहब का अल्टिमेटियम और प्रोफेसर साहब का बुलडॉग उसे भगाने के लिए ट्रेड किये गये हैं। मगर वह दोनों कुत्तो को नाको चने चबवाकर अब भी प्रोफेसर साहब के टोप पर टपकता है। अब और किसी से छेड़ नहीं करता। वकील साहब जब सीधी गली आते जाते हैं तब कुछ नहीं बोलता मगर जब अपने प्रेम पथ पर बढ़ते हैं तभी उनकी खोपड़ी पर कूदता है। समझ में नहीं आता कि इस लगूर से पीछा क्योंकर छूटे !

डाक्टर फरनीचरपलट

“क्यों बे रामू, माइनबोर्ड से मेरी डिगरिया कहा गई?”

डाक्टर मक्खनलाल एच० एम० डी०, बी० एम० डी०, एच० एम० सी०, (कैलिफोर्निया, कोयम्बतूर, कलकत्ता) ने अपने दवाखाने के चबूतरे पर कदम रखते ही आदत के मुताबिक अपने माइनबोर्ड पर प्यारभरी नजर डाली ही थी कि एकाएक गर्म हो उठे।

रामू अन्दर दवाओं वाली अलमारी की टूटी टाग को ईंटों के सहारे खड़ी करने की कोशिश कर रहा था। डाक्टर साहब की तेज आवाज कान में पड़ी और पच भी गई, रामू तिरछी ईंट को सीधा करने में ही उलझा रहा। डाक्टर मक्खन लाल एच० एम० डी०, बी० एम० डी०, एस० एम० सी० (कैलिफोर्निया, कोयम्बतूर, कलकत्ता) हाई पोटेन्सी तक गर्म हो उठे, कहने लगे, “हजार बार कह चुका हूँ कि कम्बल्ट डाक्टर मिसरा के नौकरो से सबक सीख। कैसे अपने डाक्टर साहब की ताबेदारी बजाते है। कैसे उनकी एक घुड़की पर ही थरथरा उठते हैं। यहाँ इतना डाटता हूँ, फिर भी कुछ असर नहीं। यू ब्लडी स्वाइन।

डाक्टर साहब गर्माहट से बडबडाहट तक उतर आये और पतलून की जेबों में दोनों हाथ डालकर खड़े-खड़े अकड़ते रहे।

रामू अलमारी की टाग का इलाज करके ही उठा। एक बार

डाक्टर साहब के चेहरे पर खाली नजरें डाल कर इस तरह देखा, गोया कह रहा हो, “हा अब तुम्हारी बकवास भी सुन सकता हूँ।” और फिर बाहर आकर साइतबोर्ड को नजदीक से धूर-धूर कर देखने लगा। डाक्टर मखनलाल एच० एम० डी०, एम० डी०, एच० एम० सी० (कैलिफोर्निया, कोयम्बतूर, कलकत्ता) की डिग्रियों में शुरू का केवल एच० एम० और कलकत्ता का “डबल टी० ए०” ही बच रहा था, बाकी हुर्रफों सहित काली पालिश की लकड़ी उखड़ गई थी। रामू ने उस खाली जगह को उगली फेरकर महसूस किया, फिर धीरे-धीरे डाक्टर साहब की ओर गर्दन घुमाई और इस तरह गम्भीर होकर बोला जैसे कोई बत्तीस रुपए फीस वाला डाक्टर गये बीते मरीज को जवाब दे रहा हो, डिग्रियां आपकी अब घिस गई साहेब, बेकाम हो गई।”

डाक्टर साहब के सन्न की आखिरी बूद भी अब पमीने के साथ ही टुलक चुकी थी। ज्वार के समुद्र की लहरों सा उमड़ता हुआ डाक्टर साहब का गुस्सा उनकी तोड़ को छाती के साहिल पर ला-ला कर पटकने लगा। हर सास के साथ बढ़ती हुई तोड़ को अपनी हृद में रखते बेचारे पतलून के दो बटनों ने लड़ाका बीबी के कमजोर शौहर की तरह आखिरकार दम तोड़ दिया।

आग में धी पड़ गया। भट से पतलून सम्हाली और करीब करीब चीख कर बोले, “अबे, खड़ा-खड़ा कानून न बघार। मैं पूछता हूँ, कैसे घिस गई?”

“अरे रगड़ते-रगड़ते घिस गई साहेब। अपने पतलून के बटन ही देख लेओ।”

डाक्टर मखनलाल गुस्से की तेजी से गूंगे हो उठे। उनके भरे-भरे, जिमीकन्द की गांठ ऐसे चेहरे के मसिल फड़कने लगे। रामू

अपनी मुस्कुराहट को नाक के नकसीरे रगड़ने की आड में छिपाकर ज्यों छोटे से घूँघट की आड में बड़ा खूबसूरत चेहरा खिलता है, झपटता हुआ तेजी से अन्दर गया और घड़े से एक गिलास पानी लेकर आगे की ओर बढ़ा ।

डाक्टर मक्खन लाल का क्रोध अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था । रामू की मुस्काहट और पानी के गिलास को देखकर वे आपे में न रहे और दात पीसते, मुट्टिया माँजते हुए अन्दर आये । पतलून नीचे खिसकने लगा, डाक्टर साहब को पतलून सम्हालने की फिक्र पड़ी, गुस्सा ठिठक गया । तब तक मौक़े का लाभ उठ कर रामू बोल उठा, “क्या तमासा कर रहे हैं साहेब ? वो सामने मरीज आ रहे हैं ।”

डाक्टर साहब ने सड़क की तरफ घूमकर यो देखा ज्यो अकाल के टूटे को पकवानो भरी थाली की खबर मिली हो ।

डाक्टर साहब ने खुशामद और मचलने की क्रिया को एक साथ साधकर बड़ी आतुरता के साथ कहा, ‘जा-जा बेटा, लपककर बुला ला उन्हे । कहना, असली मशहूर डाक्टर यही है । जल्दी जा, कहीं कोई उन्हे मिसरा का पता न बतादे ।”

गिलास मेज पर रख कर रामू नाक के नकसीरे रगड़ता हुआ बाहर चला गया । डाक्टर मक्खनलाल बड़ी आतुरता के साथ अपनी डाक्टरोचित गम्भीरता को सम्हालकर कुर्सी पर बैठ गये, और स्टेथेस्कोप को जेब से निकाल कर बाएँ हाथ में ले उसी मुट्टी पर अपना चेहरा टिका लिया, फिर शान से नुस्खा लिखने लगे । बीच-बीच में जरा सी नजर उठाकर फुटपाथ की तरफ देख लेते थे । रामू मेस्मेरिज्म के प्रोफेसर की तरह उन देहातियो पर धीरे-धीरे असर डाल रहा था और दोनों देहाती सशक दृष्टि से देखते हुए उसकी बातें

सुन रहे थे, बीच-बीच में एक दूसरे से नजरें मिलाकर अपनी शंकाओं का समर्थन भी प्राप्त कर लेते थे। डाक्टर मक्खनलाल के लिए यह प्रतीक्षा न जाने कितनी लम्बी चौड़ी हुई जा रही थी, नुस्खा लिखते लिखते ऊबकर कलम रख दी, मगर स्टेथेस्कोप वाला हाथ ज्यों का त्यों ही रहा। डाक्टर साहब का ध्यान मेज पर रखे पानी के गिलास की तरफ गया। गिलास उठाकर इस शान और सतोप के साथ पानी पीने लगे, जैसे महीनो बाद आज इत्तफाक से उन्हें पानी पीने की फुरसत मिल गयी और उस फुरसत का उपयोग बड़े इनमीनान के साथ कर रहे हैं। मरीजों के फँसने में जितनी देर होती जा रही थी उतनी ही डाक्टर साहब की बेकसी भी बढ़ती जा रही थी। ठन्डे पानी के घूंट रफता-रफता मिथिलेटेड स्पिरिट के घूंट बनते जा रहे थे कि अचानक एक देहाती खीभ भरे स्वर में जोर से कहता हुआ सुनाई पड़ गया, “अरे काहे, बार-बार अटकावट हौ, हमका ? कहि चुकेन कि मिसिर डागवर के लगे जाव। चलो हौ रमैया।”

एक ने दूसरे का हाथ पकड़ कर खीचा, डाक्टर साहब की उम्मीदों के तार खिच गये। गिलास मेज पर रखकर तुरन्त खड़े हो गये। बदहवास कदम बढ़ा ही था कि ढीली पतलून पकड़े हुए वही से खड़े-खड़े पुकारने लगे, ओ भइया देहाती। यहा आओ, यहा आओ। अरे रामू, लाता क्यों नहीं इन्हे ? आ जाओ, तुमसे एक बात कहनी है।”

रामू हाथ पकड़कर दूकान की ओर खींचता हुआ बोला, “हा-हां बात तो सुनते ही जाओ यार। इनकी बात की कोई कीमत थोड़ी ही है।”

“क्या बकता है रामू ?” डाक्टर मक्खनलाल बड़ी-बड़ी मनौतियों के बाद आये हुए मरीजों के सामने रामू का इस तरह

लापरवाही के साथ बात करना वर्दाश्त न कर सके । रामू ने इस डाट के जवाब में अपने नकसीरे रगड़े और अलमारी के पीछे डिस्पेसरी में चला गया ।

मरीजो को कुर्सियों पर बैठने के लिए इशारा कर खुद भी बैठते हुए डाक्टर साहब ने कहा, “कहो भइया, कहां से आए हो ?”

“मडियाहू ते आए हन ।” एक ने जवाब दिया ।

“मडियाहू ?” डाक्टर साहब ने पेशानी पर चिन्तन की रेखाये चढाकर गर्दन हिलाते हुए कहा, “वहाँ तो मैं कई बार हो आया हू ।”

अलमारी की आड से रामू बोला, ‘जब-जब तगादों से घबराये हैं मडियाहू ही गये हैं ।’

डाक्टर साहब ने अपने गुस्से पर लगाम लगाकर बात पर रग चढाते हुए कहा, “हा तगादे पर भी जाना ही पडता है । बैन लखनऊ के बाहर जाने की फीस मैं सोलह रुपये चार्ज करता हूँ । मगर तुम लोग तो इतनी दूर से पूछते-पूछते आये हो । तुमसे कोई फीस नहीं लूंगा । खाली दवा के दाम देना । हा बनाओ, तुम्हे क्या शिकायत है ।”

डाक्टर साहब स्टेथेस्कोप को गले में डाल कर मरीजो की शिकायत सुनने के लिए तैयार हो गये ।’

मरीज बोला, ‘हमका आपते कोनो सिकैत नाही है सरकार । हमका जाय देओ । डागदर मिसिर के लगे जाब ।’

“मिसरा ?” डाक्टर मक्खन इस तरह हंसे, गोया देहातियो की बुद्धि पर तरस खा रहे हों, फिर कहने लगे, “किसने तुमको ये सलाह

दी ? उनके पास तो खाली चार हरफों की डिगरी है, एम० बी० बी० एम० । अब अपने मुंह से कहना तो नहीं चाहिए, नौ हुरूफों की डिगरिया पास की हैं मैंने । तुमने मड़ियाहू में सुना ही होगा मेरा नाम डा० मखनलाल एच० एम० डी०, बी० एम० डी०, एच० एम० सी० (कैलिफोर्निया, कोयम्बतूर, कलकत्ता) मैंने हजारों केसेज अच्छे किये हैं ।”

डिसेसरी से बाहर निकलते हुए रामू बोला,—“अरे ये बड़े पुराने डाक्टर हैं । डाकरी करने —करते इन ती डिगरियाँ तक धिस गईं ।”

“रामू !” डाक्टर साहब ने घुड़की दी ।

रामू चट से बोल उठा —, “महाराजा वाँसमडी का नुस्खा बाँध दिया है हुन्नूर, अब तबब साहब नुस्खास को पलस्तर चढाना है ।”

“ठीक है ।” डाक्टर साहब गम्भीरता के साथ बोले, “उनसे कहना कि पलास्तर चढाने की फीस एक हजार रुपये लूंगा और दिन में मुझे आज सत्तर मरीज देखने हैं । इसलिए.....”

“सत्तर ?” रामू ने मुंह सिकोड कर कहा — “एक सौ सत्तर डाक्टर साहेब । आप तो भूल-भूल जाते हैं ।”

“हाँ-हाँ मैं भूल गया था । खैर उनसे कह देना कि मैं दिन में विजिट नहीं कर सकता । रात में आँऊगा किसी वक़्त ।”

“मगर रात में तो आपकी कुतवाली में हाज़ारी लगती है न ?”

डाक्टर मखनलाल ने आग भरी निगाहों से रामू को घूर कर

देखा, फिर हंगते हुए देहातियों से कहने लगे, “रात में दरोगा जी को इजेक्शन लगाने जाता हूँ। बड़ी मुश्किल है, इतने मरीज आते हैं कि आज चार महीने से मोने और खाने तक की फुरसत नहीं मिली। बड़ा डाक्टर होना भी मुसीबत है। हाँ भई, बताओ तो तुम्हें क्या तकलीफ है ? बुखार आता है ?”

“नाही।”

“तब ? पेट में दर्द रहता है ?”

“नाही।”

“तब मेरे ख्याल में आँतो की ट्यूबरकलोसिस है तुम्हें।”

रामू बोला, “हाँ डाक्टर साहब, और मेरे ख्याल में इन्हें फेफड़े की ब्रांकाइटिस और गले की मेनेजजाइटिस भी है।”

डाक्टर मक्खनलाल ने कानों में स्टेथेस्कोप लगाते हुए गम्भीरता के साथ कहा, “हाँ-हाँ हो सकती है। इधर आओ भैया, जरा इकजामिन तो करूँ।”

“नाही, जिलेदार हमते कहिन है कि मिसिर डाँगदर के लगे जाओ। उइ गड़े डाँगदर आयें।”

डाक्टर साहिब ने गड़े पहुँचे हुए संत की तरह मायामोह से भ्रमित देहातियों की बुद्धि पर दुःखित होते हुए कहा—, “मेने अभी-अभी तुम्हें समझाया कि वे एक डिगरी वाले डाक्टर हैं, मैं तीन डिग्रियों वाला हूँ—उनमें दो डिग्रियाँ यानी पाँच हुरूफ बड़ा...”

रामू बात में बात जोड़कर बोल उठा, “हाँ और क्या ? अरे मक्खनलाल बड़ा कि मिसरी ?”

“रामू !” कानों से स्टेथेस्कोप निकालते हुए डाक्टर मक्खन-लाल गरजे ।

रामू ने उतने ही ठड़े स्वर में कहा, “इन्हें समझाया था सरकार । आजकल बड़े आदमियों का जमाना है, और बड़े आदमियों को तो मक्खन की ही जरूरत रहती है ।”

देहाती उठ खड़े हुए । एक ने दूसरे से कहा, “चलो हो काका । ये लोग कौनो बड़े जालियाँ है । हम लोगन का फसाय रहे हैं ।”

दोनों चलने लगे । रामू और डाक्टर मक्खनलाल दोनों ही उनकी ओर बढ़े । नीमशहरी संस्कृति का देहाती भतीजा उलटकर खड़ा हो गया, कहने लगा, “अबकी दाय जो कोनो आगे बढ़ा तो लट्ट मारव ।”

डाक्टर और कम्पाऊन्डर ठिठककर खड़े हो गये । दोनों मरीज घर आई लक्ष्मी की तरह वापस लौट गये । डाक्टर मक्खनलाल पतलून को तोड़ से चिपकाकर ठंडी साँस छोड़ते हुए कुर्सी पर बैठ गये । दो सेकंड चुप रह कर बोले, “मेरी किस्मत ही खराब है । क्या करूँ ?”

“डाक्टरी छोड़ दीजिये साहेब, कोई और धन्धा कीजिए । रामू ने गभीर सलाह दी ।

“कौन सा धन्धा करूँ अब ? क्लर्की की, पन्द्रह बरस बाद रिट्रै चमेन्ट में निकाला गया, कोई इसाफ है ? होमोपैथी शुरू की कोई पूछता नहीं । कहाँ जाऊँ, क्या करूँ ? आठ-आठ प्राणियों का पेट । जी चाहता है सबको गोली मार दूँ, मतब में आग लगा दूँ ।”

रामू ने ठंडी साँस लेकर कहा .

“जी में आता है लगा दू आग कोहेतूर में,
फिर खियाल आता है मूमा बेवतन हो जायगा ।”

डाक्टर मक्खनलाल को डम शेर में दार्शनिकता पर संतोष मिला बोले, “सच है रामू। इसी ख्याल से डाक्टरी करता चला जाता हू। तुम एक काम करो रामू। ये अलमारी इस जगह ठीक नहीं लगती। और ये कुर्सी मेज भी गलत जगह रखी है।”

“अभी सबेरे ही तो पलटी है साहेब।”

“फिर पलट दो रामू। उलट-पुलट करते रहो। जब शो अच्छा बन जायेगा तो प्रैक्टिस जरूर चमकेगी।”

“मगर आप की तरफ मैं तो बेकार नहीं बैठ सकता साहेब। कल से डाक्टर मिसरा के यहाँ चिकित्सा करी.....”

“रामू मेरे कलेजे पर आरी न चला। तू तो बेकार नहीं। मेरी दवाई बेच-बेच के पैसा कमा लेता है। देख तूने इतने दिनों मेरे यहाँ चोरी की, मैंने कुछ भी नहीं कहा।”

“पर अब चोरी करने को भी कुछ नहीं बचा साहेब। आगे पेट कहा से पालूंगा।”

“पेट कहाँ से पालूंगा?” डाक्टर साहेब ने ठंडी साँस ली,
“मेरे लिए भी तो यही सवाल है रामू।”

“इसीलिए तो कहता हू। डॉकटरी छोड़ दीजिये। कुलफी मलाई का ठेला चलायेगे। वो पजाबी देखिये। कैसा बेचता है। तीन चार सौ कमा लेता...”

“ठीक है । मगर डाक्टर होके कुल्फी ?”

“अरे लोग बी० ए०, एम० ए० हो के जूते पर पालिश करते हैं । इसमें क्या हुआ । बल्कि डाक्टर होने की वजह से आपकी कुल्फियाँ ज्यादा बिकेगी । वो पजाबी देखिये कैसी आवाजें लगाता है...लाहौर का लखपती आज का कुल्फी वाला । कुल्फी खाल्लो नमीब वाल्लो । मलाइयों के पेड़े । हम भी चिल्लायेगे...डाक्टर मक्खनलाल की कुल्फियाँ नक्सबामिका के पेड़े ।”

“शोर न मचा रामू । फरनीचर पलट दे । मैं तब तक तेरी बातों पर गौर करूँगा ।” कहकर डाक्टर मक्खनलाल रोज की तरह अपने भविष्य पर गौर करने लगे । रामू अलमारी खिसकाने लगा ।

रोज़मरहि

शाम के ६ बजे डाक्टर जम्फर किसी दफ्तर के बड़े बाबू की तरह छड़ी हिलाते हुए घर तशरीफ़ लाये। घरवाली ने तुरन्त उनकी आवभगत की। चारपाई पर बैठने के पाँच मिनट बाद ही एलमुनियम के गिलास में चाय आ गयी, सुबह की बासी रोटी का आधा हिस्सा भी नाश्ते के लिए मिला। बच्चे उनके घर आते ही अदब से खामोश हो गये। डा० जम्फर आज कई बरस के बाद अपने घर में मिस्टर गिरधरगोपाल बनकर प्रतिष्ठा से बैठे। आज बरसों की बेकारी के बाद नौकरी का पहला दिन दफ्तर में बिताकर वे घर लौटे थे। उनकी पत्नी बच्चे सब उन्हें आदर की दृष्टि से देख रहे थे।

मिस्टर गिरधरगोपाल उर्फ़ डाक्टर जम्फर अपने मौभाग्य को सराहते हुए मन-ही-मन यह सोच रहे थे कि अगर किसी दिन नौकरी के इस स्वाँग का भडाफोड़ हो गया तो उनकी घरवाली उन्हें कच्चा ही चबा जायगी। डा० जम्फर ने अपने दोस्त डा० मयखनलाल एच० एम० बी०, एच० एम० डी०, बी० एम० डी (कैलिफोर्निया, कलकत्ता, कोयम्बतूर) के साथ-साथ लाटरी का टिकट खरीदने का निश्चय किया था। उसी के लिए घर में झूठ बोले, कहा; अगर पांच रुपये सरकारी फार्म भरने के लिये होते तो सवा सौ रुपये की नौकरी कल ही मिल जाती। पत्नी ने इनकी बातों का विश्वास कर आखिरी जेवर बेचकर रुपये दे दिये। उसी बहाने से वह नौकरी का बहाना भी हुआ। रोज़ घर शान से सुनाते कि छोटे साहब इतने दिनों में ही उनसे बेहद

प्रसन्न हो गये हैं, कहते हैं, “बाबू गिरधरगोपाल, आपके जैसी ड्राफ्टिंग तो बड़े-बड़े एम० ए० और बी० ए० भी नहीं कर पाते ।” इस प्रकार की बातों से वे घरवाली का हौसला बढ़ाते रहे ।

मगर होतव्यता होकर ही रही, गकरा के दिन अपनी जान की ख़ैर मनाता । सवा महीने के लिए उनकी जन्मकुण्डली में कोई शुभग्रह उदय हो गया था, जिसकी बदौलत उन्हें वह सम्मान मिल गया जो घर-घर में कमाऊ मर्द को सदा प्राप्त होता है । मगर एक महीना बीत जाने पर जब तनखाह का दिन आया तो गिरधर बाबू ने बहाना बताया कि बड़े साहब दौरे पर गये हैं, तीन-चार दिन में आ जायेंगे तब ‘पे शीट’ तैयार होगी । तीन चार दिन बाद फिर घर में तनखाह का तकाजा हुआ, तब डा० जम्फर ने बतलाया कि बड़े साहब दिल्ली के दौरे में गये थे, वहाँ से उन्हें कालेपानी की नयी बस्ती का दौरा करने के लिए भेज दिया गया है ।

“अरे कालेपानी जाये, चाहे फाँसी चढ़ें मगर बाबू लोगों की तनखाहें तो दे जाते ।” गिरधर की घरवाली गरजी । बेचारी ने तनखाह आने की आशा में अपने बचे-खुचे कान के बृन्दे और मोने की चूड़ी खुशी-खुशी बेचकर महीने भर सबका राशन चलाया था, मगर अब तो तली झड़ गयी थी । कल कैसे बीतेगा, यह भी समझ में नहीं आता था । तनखाह का तकाजा तीव्र हो गया था । डा० जम्फर रोज नया-नया लतीफा सुना देते और हस्वमामूल साढ़े नौ बजे दफ्तर के बाबुओं की तरह तैयार हो घर से चलकर डा० मक्खनलाल एच० एम० बी, एच० एम० डी०, बी० एम० डी० (कैलिफोर्निया, कलकत्ता, कोयम्बतूर) के मतब में आकर बैठ जाते ।

डा० मक्खनलाल का भी यही हाल है । ओ दुनिया में मर्ज और मरीजों की कमी नहीं हुई मगर डा० मक्खनलाल के हिस्से में

निराशा ही आती थी। डा० मक्खनलाल और डा० जम्फर दोनों मिलकर अध्यात्म-चिन्ता में दिन बिताया करते थे। बेकारी दूर करने के लिए उपाय सोचे जाते, डा० मक्खनलाल रोज अपना फर्निचर ही बदला करते जिससे कि “शो” अच्छा हो जाय, मगर “शो” न बन सका। साइनबोर्ड से उनकी डिगरियाँ रंग की पपड़ी उतर जाने के कारण गायब हो गयी थीं। आते-जाते जब उस पर नजर पड़ती, तभी आह भरते। इतने पैसे कभी न आ सके कि साइनबोर्ड नया बनवा लेते।

और डा० जम्फर तो जन्म के बेकार है। दो बार नौकरियाँ पायी भी, मगर अपने अकड़फू मिजाज की वजह से महीने-दो-महीने से ज्यादा वे चला न पाये। उनका नाम वैसे तो बाबू गिरधरगोपाल है, मगर स्कूली जमाने से ही वे न जाने किस तरह इसी नाम से प्रसिद्ध हो गये हैं। डा० जम्फर स्कूल में कई पीढ़ियों के क्लास फेलो रह चुके हैं। हर दर्जे में दो-तीन माल रुककर पढाई पुख्ता करने का उन्हें ठीक शौक रहा है। पढ़ने में कमजोर थे, इसीलिए राबर्ट ब्लेक और सेक्सटन ब्लेक की किताबें पढ़ने का शौक तेज़ हो गया था। ठमके कद के, लैली सियाहफाम के सगे भाई डा० जम्फर, गो कसरती नहीं थे, मगर चाल और कँडा पहलवानी ही था। उनका यह ख्याल था कि वे स्कूल के नामी सरगनाओं में से एक थे। उनका यह भी ख्याल था कि राबर्ट ब्लेक की मदद से उनकी अंग्रेजी खालिस अंग्रेजी जैसा हो गयी थी। स्कूल के मास्टर क्या हेडमास्टर तक उनके मुकाबले में अंग्रेजी नहीं बोल सकते थे...बहरहाल स्कूल में उनकी उपस्थिति से, दर्जा तीन से लेकर दर्जा दस तक के लड़कों, मास्टर्स, चपरासियों तक के लिए दिन भर वेरायटी प्रोग्राम चला करता था। किसी घन्टे में ये मुर्गा बने क्लास रूम के दरवाजे के पास कोने में बैठे नजर आते, किसी में नीचेवाली बेच पर झुंडा ऐसे खड़े हुए। इनको सारा ज़माना डा० जम्फर के नाम से चिढ़ाता था और ये अंग्रेजी में

नौ-नौ बाँस उछला करते थे ।

डा० जम्फर के पिता पर लड़की की शादी का कर्ज था सो ये तीन हजार में एक बेटी के बाप के हाथ बेच दिये गये ।

डा० जम्फर का खयाल है कि उनकी घरवाली अभागी है और घरवाली का जो ख्याल है वह आये दिन पास पड़ोसवालों पर प्रकट होता रहता है । डाक्टर अगर अकड़ में बीम चढ़ते हैं तो डाक्टरनी छुब्बीस होकर बग्सती हैं ।

एक डाक्टर मक्खनलाल का सहारा है । वो भी उनके जैसे ही नसीब के मारे हैं । रोज-रोज फर्नीचर पलटते रहने की आदत से राह चलते मुहल्लेवालों में उनका भी नया नामकरण हो गया है । डाक्टर जम्फर के दोस्त डाक्टर फर्निचरपलट के नाम से मशहूर हो गये हैं । दोनों ही जमाने से तग हैं मगर जीने से मजबूर हैं ।

डाक्टर मक्खनलाल का कम्पाउन्डर आज से करीब छह महीने पहिले उनका स्टेथेसकोप और बहुत सी दवाये चुराकर और वो अपनी तनख्वाह वसूल कर चला गया था । साइनबोर्ड से डिगरियाँ घिस गयी थी । डाक्टर मक्खनलाल बगैर हथियार के सिपाही बने दिन-रात रोया करते थे, क्या करें जनाब, किस्मत का खेल है । बतलाइये स्टेथेसकोप के बिना और दवाओं के बिना कोई डाक्टर कैसे प्रेक्टिस कर सकता है ।

अब साइनबोर्ड पर डिगरियाँ भी नहीं रही, फिर पब्लिक कैसे मेरी योग्यता समझ पायेगी ? कागज में लिखकर चिपकाता हूँ तो मुहल्लेवाले लड़के ऐसे शैतान हैं कि रोज फाड़ डालते हैं । अनाप-शनाप लिखकर मेरी 'प्रेस्टिज' बिगाड़ते हैं ।

एक दिन जब घर से तनख्वाह न पाने वाले बाबू की तरह शान कायम रखने की कोशिश के बावजूद मुँह लटकाये डाक्टर जम्फर गली दूकानवालों की फब्तियाँ मनुते, अग्रेजी में कभी-कभी बमकते हुए, डाक्टर फर्नीचरपलट के मनब पहुँचे तो दोनों मित्रों में दुःख-सुख होने लगा ।

डाक्टर फर्नीचरपलट ने जब अपनी आम शिकायतों का शत-चण्डी पाठ दुहरा लिया तो डाक्टर जम्फर भी गहरी ठण्डी मास निकाल कर बोले, “हाँ यार, कभी-कभी तो जी में आता है कि लगा दूँ आग कोहेतूर में, फिर खयाल आता है मृसा बेवतन हो जायेगा ।”

दोनों डाक्टरों ने साथ-साथ यह शेर पढा, गोया रोजामरहि की बेकारी देवी की पूजा का एक और कार्यक्रम पूरा हुआ ।

डाक्टर जम्फर माथे पर बग डालकर बोले, “कुछ नहीं, दिस वर्ल्ड इज आल माया, एण्ड मिथ्या, फान्स बोगम । सो बैटर लीव दि वर्ल्ड, डाक्टर । आओ हम तुम बैराग ले ले । अब पैनालीस-छियालीस की उमर आई । वी कैन विकम सेन्ट ।”

डाक्टर फर्नीचरपलट ने रोज की तरह इस प्रश्न का जवाब दिया, “हाँ दोस्त अब तो मेरे दिल में यही लगन है । बस, मैंने तो अपनी तकदीर को अब मेँ छे मंतीने की मोहलत और दे दी है कि चेत, वरना मखन वाल बैराग लेता हूँ ।

फिर लाट्री की चर्चा चली, सपने बन्धे, “अरे कभी हमारी बेरी में भी फल लगेंगे ।” इस कहावत के साथ एक दैनिक नियम और मथा ।

इस तरह बातों में हमेशा की तरह दिन बीता, रात आई ।

दोनों डाक्टर साथ-साथ चले । डाक्टर फर्नीचरपलट पतलून में हाथ डालकर और डाक्टर जम्फर छड़ी हिलाते हुए ।

घर के दरवाजे पर पहुँचते ही डाक्टर जम्फर अपनी तमाम अकड़ बटोरने लगे । अकड़ कर आवाज़ दी, “कुण्डी खोलो ।”

दरवाजा खुलते ही घरवाली बरस पड़ी । “क्यों जी, तुम झूठ बोलते हो । तुमने पाँच रुपये ठगने के लिये इतना बड़ा जाल रचा ? मुझे सब मालूम हो गया है, तुम डाक्टर फर्नीचरपलट के यहाँ दिनभर बैठे रहते हो…………।”

“यू आर रिगरेटिंग मी सत्री की अम्मा । यू काल माई फ्रेंड इन बोगस नेम्स । मैं आज ही बैराग ले लूँगा ।”

खूब गर्मागर्मी हुई । मुहल्ले भर ने जाना । लड़ाई यहाँ तक हुई कि डाक्टर जम्फर घर से निकल आये । घरवाली ने तेहे में फटा-फट दरवाजे बन्द कर लिये ।

कहीं और जगह न पाकर डाक्टर जम्फर ने डाक्टर मक्खन-लाल के मतब के चबूतरे पर एक रात का कड़कड़ाता सा सन्यास लिया ।

और अब तो यह शर्म भी रोज़ामरहि बन चुकी है ।



मेरे आदि गुरु

पुराने भारतीय गुरुओं के सम्बन्ध में बहुतों ने बहुत कुछ जो सुन रक्खा होगा उसका एक रूप बीसवीं सदी में रहने हुए भी हमने आखों देखा है। बचपन में जो पंडित जी हमको पढ़ाते थे, वे प्राचीन ऋषि गुरुओं की आत्मा और वेगभूषा न रखने हुए भी किसी हृद तक उनसे मिलते-जुलते हुए अवश्य थे। मसना मार्च के महीने में तीसरे पहर यदि आप कभी उनके यज्ञ पहुँचे होते तो हम में से किन्हीं दो छात्रों को आप ज्योमेट्री का थ्योरम जोर-जोर से सुनाते हुए, पंडित जी की दो गायों की सानी करते हुए पाते। कोई लड़का आपको बाबर के बाप हुमायूँ का माहात्म्य बखानता हुआ पंडित जी के आगन के साथ-साथ इतिहास को बटोरता हुआ भी मिल जाता। तीन चार बजे का समय दरअमल पंडित जी की भाग घोटने का समय हुआ करता था। वे अपने नवाबी जमाने के बने हुए मकान की पौली में चबूतरे पर दत्तचित्त हो सिलौटी पर विजया सिद्ध किया करते थे। जब तक भाग पीसते-पीसते सिल न उठ आये तब तक पंडित जी अपने आसन से उठते न थे। इस कार्यक्रम में लगभग डेढ़ घन्टा लगता था। उतने समय में पंडित जी विद्यार्थियों से सानी-पानी, भाड़-बुहारू आदि काम करवाया करते थे। परन्तु इन कामों को करते हुए भी लड़कों का अपनी पढ़ाई जारी रखना नितान्त आवश्यक था। पंडित जी किसी की एक पाई भी मुफ्त में खाना हराम समझते थे। पौली में बैठकर भाँग घोटने के कारण चूँकि पंडित जी और उनके विद्यार्थियों के बीच में दीवाल की आड़ होती थी, इसलिए उनका आदेश था कि सब लोग जोर-जोर से अपना पाठ याद करे जिससे कि

उन्हे सुनाई पड़ता रहे । नतीजा यह होता था कि सरस्वती की मानस मुक्ता चुनने वाले हंस मिल कर कौवा शोर मचा देते थे । ज्योमेट्री की थ्योरमें, इतिहास की कथायें, भूगोल की कर्क, मकर और विप्लव रेखाये, हिन्दी में चरित्र गठन के महत्व के साथ लिपट उलझ कर सब्जी-मण्डी के कबड़ियों की तरह अद्भुत स्वर वंचित्य उपस्थित किया करती थी । इस रटाई के कार्य-क्रम में हमें खरा आनन्द आता था । अदब से बैठने की जरूरत न होती थी । क्योंकि पंडित जी सामने न होते थे । उठ-उठ कर एक दूसरे को टीरे लगाना, मुंह चिढ़ाना, चोच दिखाना आदि मनोरंजक कार्यक्रम करते हुए हम चौबीस घण्टो में केवल उनका ही मनोव्य अपना मानकर सुख से बिताया करते थे, क्योंकि मार्च का महीना होता था । हमारी सुबह स्कूल की, और दिन के एक बजे से लेकर रात के नौ बजे तक का समय पंडित जी का हुआ करता था । मालाना इम्तहान के चार महीने पहले से हमारे खेल-कूदो पर पूर्ण प्रतिबन्ध लग जाता था, क्योंकि पंडित जी अपने किसी विद्यार्थी का फेल होना बर्दाश्त नहीं कर पाते थे । दीवाली बीनी नहीं कि पंडित जी की आज्ञानुसार हमें अपने-अपने घरों में सुबह चार बजे उठ कर पढ़ने बैठ जाना पड़ता था । जो लड़का चार बजे उठ कर पढ़ना न आरम्भ कर दे उसकी खैर नहीं । कड़कड़ाती हुई सरदी में भी कम्बल ओढ़ कर एक हाथ में लालटेन और दूसरे हाथ में लट्टु लिए हुए पंडित जी विभिन्न गलियों में रहने वाले अपने सभी विद्यार्थियों के घरों पर जाकर आवाज लगाते थे । फलाने और फलाना अगर एक आवाज में न बोला तो उसकी खैर नहीं । इस बुरी तरह धुनते थे कि बच्चों को दर्द लगता था । लड़कों के माता पिता मारपीट के सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकते थे । विद्यार्थी का पढ़ाने से पहले उसके अभिभावकों से मारपीट की शर्त वे तय कर लेते थे । “छड़ी लागे छम-छम और विद्या आवे धम-धम” के गनातन मिद्धात में उनका अटूट विश्वास था ।

उस समय शहर में कुल जमा दो तीन सिनेमा घर थे । उनमें भी हिन्दुस्तानी फिल्मों का सिनेमा केवल एक “रायल” ही था, जो कि अमीनाबाद में था । मूक चित्रपटों की हीरोइन मिस पद्मा, मिस लोबो, गौहर, जुवेदा, जेबुनिसा, माधुगी, सुलोचना आदि हम लोगों के परम आकर्षण की जिन्स थीं । परन्तु दिसम्बर से लेकर मई के पहले हफ्ते तक हम उनकी झलक भी न देख पाते थे । सिनेमा देखना तो दर किनार, चौक से अमीनाबाद तक जाने का आर्डर भी न था । मुझे अच्छी तरह याद है कि एक लड़का अपनी मां के साथ किसी रिश्तेदार के घर अमीनाबाद गया था । सयोग की बात है कि पंडित जी भी उस दिन अमीनाबाद गये हुए थे । वह लड़का अपने सम्बन्धी के बेटे के साथ बाजार घूमने निकल आया था । पंडित जी ने उसे देख लिया । देखते ही उनके चेहरे पर ऐसी घबराहट आ गयी मानो वह लड़का आत्महत्या करने के लिए निकल पड़ा हो । पचास कदम से दौड़ते हुए पंडित जी उनके पास पहुँचे और हाथ पकड़ कर हाफते हुए बोले, “मोए अमीनाबाद घूम रहा होगा ।” फिर उसकी एक न सुन अपनी ही धुन में उसे भरे बाजार में ही धुन डाला । आसपास भीड़ जमा हो गई । लोगों ने समझा कि शायद यह लड़का पंडित जी की जब काट कर भागा है, इसीलिए वे उसे मार रहे हैं । बमुश्किल तमाम उन्होंने यह सुना कि वह अपनी मा के साथ एक सम्बन्धी के घर आया है, सिनेमा देखने नहीं आया । पंडित जी उसका हाथ पकड़ कर सम्बन्धी के घर गये, अन्दर से सूचना मगवाई, और जब उन्हें विश्वास हो गया कि लड़के का कथन सत्य है, तब उन्होंने उसे छोड़ा ।

गर्मी शुरू होते ही उनकी आज्ञा से हममें से हर एक को नित्य-प्रति प्रातः काल बाह्नी बूटी पीनी पड़ती थी और वह भी एक खास दूकान से लाकर । जो बाह्नी बूटी न पिये उसे भी मार पड़ती थी । परीक्षा के दिनों में दो नियम हमें और भी पालन करने पड़ते थे ।

एक तो दिन वार के अनुसार शकुन करके घर से निकलना और दूसरे पंडित जी के इष्टदेव, एक खास मंदिर के गणेश जी के दर्शन करना । इन कार्यक्रमों में चूक पड़ जाने पर भी करारी मार पड़ती थी । शकुन वाली कविता तो मुझे अब तक याद है ।

“रवि को पान सोम को दर्पण, मंगल को गुड़ कीजै अर्पण ।
बुध को धनिया बीफै राई, सूक कहे मोहि दही सुहाई ।
सनीचर कहे जो अदरक पाऊ, तीनों लोक जीत घर आऊ ।”

इतना सब हमसे कराने के बाद पंडित जी अपने कमजोर विद्यार्थियों को पास करवाने के लिए स्कूल के मास्टरो की खुशामद भी किया करते थे । एक बार उनके ही मुहल्ले में रहने वाले एक मास्टर महोदय ने उनके एक विद्यार्थी को फेल कर दिया । पंडित जी उनसे बेहद बिगड़े । उसके घर के सामने गली में खड़े होकर पंडित जी ने उन्हें सैकड़ों गालियां सुना डाली और यह धमकी भी दे दी कि “निकतना साले कभी, मारे जूतों के खोपड़ी गंजी कर दूंगा ।”

चार महीने तक वे मास्टर महोदय अपने एक पड़ोसी के पिछवाड़े के दरवाजे से दूसरी गली में होकर आते जाते थे, क्योंकि पंडित जी अपने चबूतरे पर जूता लिए हुए रोज उनकी प्रतीक्षा किया करते थे ।

रिजल्ट के दिन के लिए भी उनका एक आदेश था—पास हो के आओ तो हाथ में तरबूज की फाँक ज़रूर हो । परीक्षाफल निकलने के दिन पंडित जी घनघोर पूजा-पाठ कर बड़े आकुल-व्याकुल भाव से अपने घर के सामने वाले चबूतरे पर बैठकर हम लोगों की प्रतीक्षा किया करते थे । दूर से हम लोगों को देखकर उन्हें फिर इतनी भी ताब न रह जाती थी कि लड़के पास आकर उन्हें अपना परीक्षाफल

सुनायें। इसीलिए तरबूज की फाँक हाथ में रखने का आदेश था। दूर से ही तरबूज की फाँक देखकर उन्हें हमारे रिजल्ट का पता चल जाता था। एक बार परीक्षाफल के दिन मेरे नये जूते ने मेरे पैरों को छालेदार बना दिया था। इसलिए लङ्गड़ाता हुआ चला आ रहा था। रास्ते में तरबूज वाले के यहाँ मुझे फाँक भी न मिल सकी, क्योंकि लड़कों ने खरीद ली थी। मैं खाली हाथ पास हुए लड़कों से दस कदम पीछे पैर के छालों से परेशान लङ्गड़ाता हुआ चला आ रहा था। मेरे हाथ में तरबूज की फाँक न देखकर पण्डित जी ने समझा कि मैं फेल हो गया। तैश में भरे पण्डित जी चबूतरे से लपक कर उठे और लड़कों की भीड़ चीर कर मेरे पास पहुँच उन्होंने धमा-धम घूँसे और चाँटे लगाने शुरू कर दिये। “मुर्दे, तुझे इत्ता-इत्ता पढ़ाया फिर भी फेल हो गया।”

मेरे मित्रगण चिल्लाये, “पास हो गया है पण्डित जी, पास हो गया है।” पण्डित जी ने मारना छोड़कर एक सेकिन्ड के लिये प्रश्न और प्रसन्नता से भरी हुई दृष्टि से मुझे देखा और फिर दूसरी धुन में मारना शुरू कर दिया, “अब तो तरबूज की फाँक क्यों नहीं लाया? पचास बार कह चुका हूँ कि मुझे दिल की बीमारी है, फिर भी मेरा दिल दहला देते हैं, ऐसे हैं आजकल के कम्बस्त चेले!”

मारने में मेरे आदि गुरु तन्मय हो जाया करते थे, यह सच है, परन्तु उनको अपने बच्चों के समान फल खिलाना भी उन्हें सुहाता था। लड़कों की पढ़ाई को लेकर इतना अधिक सतर्क रहने वाले प्राइवेट ट्यूटर अब कहाँ मिलोगे? पण्डित जी अब नहीं रहे, परन्तु उनकी करालता की वह स्मृति आज बड़ी मधुर होकर मेरे ध्यान में आ रही है। मैंने उनकी बहुत मार खाई है, क्योंकि हिसाब मे कच्चा था। नशे में वे अक्सर मुझे बेतो ही बेतो धुना करते थे। ऊपर से

पण्डित जी की माँ, बहन भावज उस मार को देखकर चिल्लानीं, “अरे लड़के को मार डालेगा क्या ?” पर पण्डित जी एक बार बेत उठाकर तब तक नहीं छोड़ते जब तक कि उनकी साँस न फूलने लगे ।

मैं उन्हें अपनी हर किताब छपने पर अवश्य ही भेंट करने जाता । जब पहली किताब छपी तो उसमें मैंने लिखा था कि “जिनकी बेतों की मार की कृपा से आज डम योग्य हुआ ।” जब दूसरी किताब लेकर पहुँचा तो उसमें यह सब न लिखकर कुछ और लिखा था ।

पण्डित जी बोले; “यह सब कुछ नहीं, वही बेतों की मारवाला मजमून लिखो बेटा ।” उसके बाद से मैं बार-बार यही करने लगा । पण्डित जी मेरी नई किताब को सुबह जब घर से निकलते तब ले कर ही निकलते । जिसे मिलते, जहाँ जाते वहाँ बात चलाकर वह पुस्तक अवश्य दिखलाते, कहते, “यह मेरा शिष्य है । देखिये, इसने लिखा है कि बेतों की मार के बदौलत यह इस योग्य बना । यही इसकी योग्यता है ।”

यदि कोई उनसे किताब पढ़ने के लिए माँगता तो वे उस को न देते थे, कह देते, “यह पुस्तक बड़ी योग्यता से लिखी गई है । इसको तुम न समझ पाओगे ।” पण्डित जी न स्वयम् किताब पढ़ते थे और न किसी को पढ़ने देते थे । किताब उनके हाथ में तब तक अवश्य रहती थी जब तक कि उसका एक-एक पन्ना ढीला होकर उड़ न जाय ।

खटकिन भाभी

खटकिन भाभी मुहल्ले की उस नेकबख्त तरकारीवाली का मशहूर नाम है, जिसके तीरे नजर का जिकार मुहल्ले के करीब-करीब सभी पचपन साला पेशन-याफ़ता जब न अब तक हो चुके हैं।

एक दिन लाला बनारसीदास एक पैसे की मूनी खरीद कर इक्की के बाकी तीन पैसे उससे लेना भूल गये तो लाला चुन्नीमल ने अपनी पैनी निगाह से लाला बनारसीदास के मोटे चश्मे की तरफ हिकारत की नजर से देख, टेढ़ से एक दुअन्नी निकाल, खट से उसके टाट पर फैंक कर कहा, “कल जो तुमसे भिन्डी ले गये थे न।”

खटकिन भाभी जरा कुछ सोच कर बोली, “भिन्डी ? कल तो तुमने कुछ भी नहीं लिया था, लाला ?”

चुन्नीमल ने अपनी सुरमीली नजरों से उस की ओर ताक कर प्यार से कहा, “अरे भाई बड़ी भुलक्कड़ हो तुम भी। कल मवेरे ही तो ले गये थे तुमसे एक पैसे की भिन्डी, दो पैसे के बन्डे, चार पैसे की गाजर और एक पैसे की लौकी। अब यों पैसे भी भूल जाया करोगी तो बस दूकानदारी हो चुकी। तुम्हें जताये देता हूँ मुनियाँ, इस मुहल्ले के लोग साले बड़े चोर हैं। उधार देकर अगर भूलोगी तो बस.....?”

खटकिन भाभी ने मुस्करा कर गल्ले में दुअन्नी डाल दी।

इस मुहल्ले में आये हुए मुनियाँ को करीब-करीब तीन महीने हो चुके हैं, इस अरसे में अगर आप कभी चौक तशरीफ लाये होंगे, तो आपने जरूर ही गौर फरमाया होगा कि उमाशकर महाराज की दुकान पर अब तक दो किस्म के असली खिज़ाब के साइनबोर्ड लग चुके हैं। यह बात नहीं कि मुनियाँ के हुस्न पर घायल होने वाले महज वही लोग हैं जिनकी बदौलत “ओकासा कम्पनी” अथवा ल गूर मार्का खिज़ाब के संचालक आजकल सैकड़ों कर्मचारियों के बीबी बच्चों का पेट भरते हैं, बल्कि मुनियाँ उनके गले में भी गेदे का हार बनकर इठला रही हैं, जिनके दिल के बुतकदे में हर वक्त शहनाई बजा करती है। यानी यह कि हमारे दोस्त सरूपचन्द भी अक्सर वहाँ पर अपना सेट से बसा हुआ रेशमी रुमाल गिरा आते हैं।

शुरूआत यों ही, रपता-रपता, हुई थी। मुनियाँ अपनी साड़ी का पल्ला कंधे पर डाले हुए जरा अदा से जा रही थी। सरूपचन्द उसकी इस मस्तानी चाल पर मर कर रह गये, फिर जरा लपक कर उसके आगे से धूरते हुए निकले। सीने पर हाथ रखा, गर्दन लटकाई, एक ठडी साँस निकल पड़ी और बस खेल खत्म। मुनियाँ न तो मुस्कराई, न ठुमकी। हाँ, उसने इन्हे देख भर लिया, और वह भी लापरवाही के साथ।

दूसरे दिन सरूपचन्द उम गली से दो तीन बार गुजरे। एक बार चिकन का चुन्टदार कुरता पहन कर, एकबार शेरवानी और चूड़ीदार पायजामे में, और तीसरी बार पतलून की शिकन ठीक करते हुए।”

तीसरे दिन, ठीक बारह बजे, जब मुनियाँ अपनी धोती सुखा रही थी, सरूपचन्द ने उससे पूछा, “अरे भाई, आलू क्या भाव दिये ?

मुनियाँ ने इनकी तरफ देख कर कहा, “चार पैसे सेर।”

“अमाँ गजब करती हो तुम तो। टके सेर तो मन्डी में बिकते है।

“तो ले लो न जाके मन्डी में?”

सरूपचन्द ने मुस्कराते हुए कहा, “मन्डी में जाये तो तुम हमे गालियाँ न सुनाओगी?”

“हमें क्या पडी बाबू, जो तुम्हें गालियाँ सुनाये? यह तो सौदा है, जहाँ पटे खरीद लो। हम तो चार पैसे सेर बेचते है।”

धोती सुखाते हुए मुनियाँ की करधनी में लटका हुआ गुच्छा बोला, ‘भन्न’।

सरूपचन्द की दिल की सारंगी का तार टूट गया। ठडी साँस ले बोले, “अच्छा भाई, तुम मालिक हो, चाहे जो दाम ले लो।” कहकर सरूप चन्द ने अपना रेशमी रुमाल उसकी डलिया पर फैला दिया।

तराजू पर आलू तौलते हुए मुनियाँ ने कहा, “बाबू रुमाल तो बड़ा अच्छा निकाला।”

सरूपचन्द ने मुस्करा कर कहा, “तुम्हें पसन्द है।”

तराजू रख कर मुनियाँ ने रुमाल हाथ में उठा लिया, फिर सतृष्ण नेत्रों से सरूपचन्द की ओर देखकर बोली, इसमें तो खसबोय भी बढ़िया लगी है।

उस दिन सरूपचन्द धोती में आलू बाँध कर घर लौटे।

इसके बाद चार दिनों में लगातार चार रूमाल उसकी दूकान पर धोखे से गिर पड़े और पाचवे दिन तरकारी खरीदते वक्त वह ओटो दिलबहार की शोशी उसकी डलिया पर भूल कर चले आये ।

एक दूसरे को कनखियों से देख कर अल्टहडपन के साथ मुस्करा देना इसके बाद होना ही था, और यही हुआ भी । लेकिन दोस्ती बढ़ाने का बायस हुआ सिर दर्द और उसकी दवा । मुनियों ने सरूपचन्द को समझ लिया ।

गर्मी के मौसम में हम यह कह सकते हैं कि चोरी डाके, खून और मुहब्बत करने के लिये दिन का वक्त जितना महफूज रहता है, उतना रात का नहीं । तहखाने में चुपके से आने वाली मीठी नींद को तलाक देकर हजरत इश्क करने आ पहुँचे ।

दरवाजे पर दस्तक दे गली के दोनों तरफ देखकर धीरे से कहा, “खोलो ।”

एक अर्जाब किस्म की कापती हुई आवाज आई, “को आय ?”

“अरे मुनिया है ?”

चारपाई की चर-चर के साथ मुनिया की “ऊह” सुनाई पड़ी और दरवाजा खुल गया । सरूपचन्द भट से कमरे के अन्दर दाखिल हो गये ।

कमर पर हाथ रखकर दरवाजे के पास खड़ी हुई मुनिया ने कहा, “क्या है, बाबू ?”

उसकी चारपाई पर इतमीनान से लेटकर पंखा भलते हुए सरूपचन्द बोले, “अरे किवाड़ धद करो जल्दी से ।”

मुनियां ने तड़ से कहा, “क्यों ?”

सरूपचन्द बस हकला कर रह गये ।

“कैसे तकलीफ की ?”

“अरे बड़ी दूर से चला आ रहा हूँ । बड़ी प्यास लगी है । जरा पानी तो पिला दो मेरी रानी ।”

“देखो बाबू, जरा इतना आगे बढ़ो कि निभ जाय । पास ही तो पौसाल है । वहा पानी क्यो नहीं पी लिया ?”

“भई पौसाल में हमसे नहीं पिया जाता । वो ब्राह्मन साला बांस के नले से पानी पिलाता है ।”

मुनियां पानी लाने चली गई और लुटिया उनके सामने बढ़ाते हुए कहा, “तो यहाँ लुटिया में पीने के लिए चले आये । अच्छा लो ।”

पानी पीकर सरूपचन्द ने जेब से रुमाल निकालते हुए कहा, ‘मुनिया जेब बड़ी भारी हो रही है । ये पांच रुपये रख लो । फिर ले लूंगा ।’

मुनियां कुछ बोली नहीं, चुपचाप हाथ बढ़ा कर रुपये ले लिये ।

“एक पान खिला दो, मेरी रानी ।”

मुनियां चुपचाप खड़ी रही । पीछे कोठरी में कोई कराहा । सरूपचन्द ने हक्का-बक्का होकर पूछा, “कौन है ?”

“अच्छा-अच्छा घबराओ मत । शाम को दवा ले आऊंगा । एक पान खिला दो ।”

मुनियां पान लगाने बैठ गई ।

बुढ़िया ने आवाज दी, “मुनियां को आय ?

“डाक्टर साहब,” मुनियां ने पान लगाते हुए जवाब दिया । सरूपचन्द खुश हो गये ।

“हमरी दवा अब न होई । बेफजूल पैसा-टका खर्चा कर्यो तो खबरदार ।”

“अरे अम्मा, ई सरकारी डाक्टर साहब हैं, पैसा न लेहैं ।” कनखियों से मुनिया ने सरूपचन्द की ओर देखा । सरूपचन्द को इत-मीनान हो गया कि मुनियाँ अब उनकी हो गई । लपक के उसके पास जा बैठे और उसकी पीठ पर हाथ रख दिया ।

पान पर चूना लगाते हुए मुनियां ने अपने दोनों कंधे जोर से हिला कर उनका हाथ गिरा देने की चेष्टा करते हुए धीरे से कहा, “ऊँह ये क्या करते हो ?”

हवा के झोंके से दरवाजा जरा खुल गया था । मोटे-मोटे शीशों के चश्मे के अन्दर से गिद्ध की दृष्टि से ताकते हुए लाला बनारसीदास ने दो बार खंखार कर गरदन बढ़ाते हुए जरा लहजे के साथ कहा, “मुनियां नीबू हैं ?”

मुनिया भपाके के साथ खड़ी हो गई ।

सरूपचन्द का मुँह खुला-का-खुला ही रह गया ।

करीब-करीब हम सब ही लोग यह जान चुके थे कि मुनियां अब हमारी अच्छी खासी रिश्तेदार हो गई हैं। लिहाजा हम सब लोग अब उसे आपस में खटकन भाभी के लकब से पुकारा करते थे।

मुन्ने महाजन की दूकान पर बैठे गपशप लड़ा रहे थे कि देखा, सामने से हँसते हुए सरूपचन्द चले आ रहे हैं।

“अरे भई बैठे हो ? अभी किस बात पर हंस रहे थे तुम लोग ?” सरूपचन्द ने आते ही पूछा।

“अमां, नहीं जी तुम्हें धोखा हुआ है। हम लोग तो दो घटे से बैठे हैं, हँसी साली पास तक नहीं आई ?” निहायत सजीदगी के साथ मुन्ने बोला, “मगर आज तुम्हारी आँखें बहुत ज्यादा लाल हो रही हैं ?”

सरूपचन्द मस्ती में हसते हुए बोले, “आज भरोसे ने चार पैसे की पत्ती छना दी। और कोई होता तो बाबू जी वहीं ढेर हो गया होता, मगर यह तो कहो कि हम हैं चाहे दो आने की छन जाय, तब भी चेहरे पर शिकन तक नहीं।”

“और ये हाथ में क्या है ?” हमने पूछा।

“दवा है, यार। वाइफ को जुलाब दिया जायगा। कई दिनों से उनका पेट बस गड़बड़ ही चला जा रहा है। ऐसा कड़ा जुलाब है कि बस कुछ पूछिये मत। यह तो कहो कि मेरी वाइफ ही ऐसी हैं कि इसे भी हजम कर जाएगी। निहायत ही सरल मेदा है उनका।”

“और हमारी भाभीजान का मिजाज कैसा है ?” शंकर ने दरयाफ्त किया।

सरूपचन्द बेसास्ता हस पड़े, “भई यह भी खूब रही ।”

सरूपचन्द ने फिर हंसी रोक कर पूछा, “क्या बात है...यही कि भाभी साहब के मिजाज मुबारक.....।”

बात काट कर सरूपचन्द फिर हस पड़े । बोले, “भई इस मिजाज की भी एक ही रही । कल से दस्त आ रहे हैं ।” यह कह कर के वह फिर हसने लगे । हमने समझ लिया कि आज भाग ने उनके ऊपर अपना पूरा-पूरा अधिकार स्थापित कर लिया है ।

शकर ने पूछा, “क्यों जी, किसे दस्त आ रहे हैं...भाभी जी को ?”

“अमा यार, सब मजा किरकिरा कर दिया । बुढ़िया मरने वाली है, उसे दस्त आ रहे हैं । यह देखो, उसकी भी दवा लिये जा रहा हूँ ।”

भांग के नशे में लाला सरूपचन्द अकसर शेरें कहने लगते हैं, और उनका दावा है कि उनकी कही हुई शेर एकदम नायाब होती है । एक दो मिनट तक मन ही मन कुछ गुन-गुनाने के बाद सरूपचन्द खुद ही फड़क उठे, अहा भई क्या लाजवाब मिसरा कहा है । मुलाहजा हो ।

“उनकी फुरसत में हम हुए बेजार, न रोते बने न हंसते बने ।”

चारों तरफ से दाद दी जाने लगी, सरूपचन्द फिर गुनगुनाने लगे, “न न ना . . ना . . न ना ना ना न ना...”

“हम तो आशिक हैं परीजादों के, न जाते बने हैं न आते बने हैं ।”

“अहा भई, वाह ! वम, गजब कर दिया उस्ताद । इस वक्त अगर मिर्जा गालिब भी सामने आ जायें तो तुम्हें अपना उस्ताद मान लेंगे । बस, यही सब बातें तो हैं ही, जिनकी वजह से खटकिन भाभी इन्हें मानती हैं, वरना लाला बनारसी दास क्या...?”

सरूपचन्द चमक उठे । कहा, “बस उस खबीस का नाम ही हमारे सामने न लेना । साला समझता है कि मुनिया उस पर जान दे रही है । किसी दिन अगर मौका लग गया तो साले को कच्चा ही चबा जाऊंगा । बुड्ढा बन्दर कही का ।”

यह कह कर सरूपचन्द एक-दम उठ खड़े हुए ।

“क्यों क्यों...खैरियत तो है ?” हमने पूछा ।

“बस अब चल दिए, भाई जान ।”

‘अमा अभी से ? अरे बैठो भी ।’

“नही भई अब नही रुक सकता । बहुत से काम हैं । अच्छा, जे राम जी की ।”

और वह चल दिये ।

×

×

×

×

कल शाम की एक मार्ले की खबर यह है कि खटकिन भाभी की माता जी का प्राण-पव्हेरू इस कायाखूशी पिंजड़े में बड़े जोर से फड़फड़ाने लगा था । भाभी रोने लगी । वह तो कहिये, उस मौके पर लाला बनारसीदास वहा तसल्ली देने के लिए पहुँच गये, वरना गजब ही हो जाता । अगर कही भाभी साहिबा को गश

ही...उफ । लाला बनारसीदास बेचारे उसके रोने से इस कदर घबड़ा गये कि बस हृद थी । अंधेरे में उसकी कोठरी की तरफ बढ़ते हुए जो चले तो डले से भिड़ गए । अगर कहीं दीवार का सहारा न लिये होते तो आप यकीन मानिये, इस वक्त उनकी क्या कैफियत हो गई होती ।

“क्या हुआ, मुनियां रानी ?” उन्होंने बड़े प्यार से पूछा ।

मुनिया रानी रो रही थीं । “क्या हुआ मुन्नो ?” अंधेरे में टटोलते लाला साहब इतना आगे बढ़ गये कि अम्मा की खाट से जा टकराए ।

“अरे-अरे, को आय ?” अम्मां चीख उठी ।

मुनिया ने लपक कर लाला जी को दोनों हाथों से सम्भाल लिया । लाला साहब के दिल की धड़कन का अन्दाज लगा कर अगर कोई यह सुने कि लाला साहब फरमा रहे थे, “क्या हुआ मुनियां बताओ तो सही ।”

सुबुकते हुए मुनिया ने बताया, “सरूपचन्दर डाक्टर मरीपीटे ने न जाने कैसी दवाई दी कि अम्मा के दस्त बढ़ गये ।”

सुना है कि उसी वक्त लाला बनारसीदास ने सरूपचन्द को सैकड़ो गालिया सुनाने के बाद एक बत्तीस रुपये फीस वाले डाक्टर से दवा ला कर दी, जिससे खटकित भाभी की अम्मा को फायदा हुआ ।

खबर है कि सरूपचन्द ने लाला बनारसीदास को चौके के चौराहे पर भगी के हाथों पचास जूते लगवा कर हुक्के का पानी पिलाने का सरे आम ऐलान किया है ।

और यह भी सुना है कि खटकिन भाभी...लेकिन जाने दीजिये, उनके बारे में हम अब कुछ भी नहीं कहना चाहते, क्योंकि वह अब रिश्ते में हमारी दादी होती हैं ।

ब्रिटिश राज्य का तिलस्मी दरवाज़ा

इस रफ्तार को देखते हुए तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि मुन्नू के परम पूजनीय चचा साहब, जिन्होंने उसे अपनी गोद और गद्दी का अधिकारी बनाया है, मरते समय शायद वसीयत में भी यह लिख जायेगे कि अगर मुन्नू देश का नेता, प्रसिद्ध और पूजनीय उपन्यास लेखक अथवा बड़ा आदमी न बने तो उसे उसकी तहसीलदारी की गाड़ी कमाई की एक पाई भी न दी जाये ।

मुन्शी शिब्वनलाल को सचमुच इस बात की बड़ी भारी तमन्ना है कि जब वह किसी जगह जाये तो राह चलते लोग उन्हें देख-देख कर कहें, “यह उस बड़े नेता का बाप है ।” तहसीलदारी के जमाने में, गांवों में नेताओं का स्वागत होते देख कर उनके मन में यह प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई थी ।

प० जवाहर लाल के आप बड़े भारी भक्त हैं । सैकड़ों से सुन रक्खा है कि पंडित जी का बगला किसी बादशाह के महल से कम नहीं सजा है ।

जवाहर लाल जी के ड्राइंग रूम का वर्णन एक काग्रेसी भित्र से सुनकर आपने भी मुन्नू के कमरे को ठीक उसका इमीटेशन बना दिया । अखबार वाले को भी लीडर, पानियर, हिन्दुस्तान टाइम्स,

अमृत बाजार पत्रिका, प्रताप, भारत, वर्तमान, नवयुग, अर्जुन, आज तथा और भी बहुत से दैनिक साप्ताहिक और मासिक पत्र लाने की आज्ञा दे रखी है ।

अपने दूसरे मकान को किराये पर न उठाकर उसमें मुहल्ला पोलिटिकल कान्फ्रेन्स, हिन्दी साहित्य परिषद, श्री सनातन-धर्म रक्षिणी सभा, गांधी नाइट स्कूल, जवाहर बेकार पंडल आदि सस्थाओं के साइन बोर्ड लटका रखे हैं । इनमें से मुन्नु किसी सस्था का सभापति है और किसी का उपसभापति अथवा मंत्री । बड़े-बड़े पत्रों में मुन्नु के व्याख्यानों के समाचार, उसके प्रोग्राम तथा उसके चित्र छपे हुए देखने की बड़ी इच्छा है । गर्ज कि किसी तरह मुन्नु को ठोकर-पीटकर वैद्यराज बनाया जा रहा है ।

लायब्रेरी से महात्मा गांधी का जीवन चरित्र लाकर पढ़ने के लिए कहा । गनीमत इतनी ही है कि वह इन बड़े-बड़े आदमियों के कारनामों से बहुत अच्छी तरह वाकिफ नहीं, महज उनके नाम सुन रखे है और उनके बारे में बहुत सी सच्ची-भूठी बेपर की लनतरानिया ।

मुन्नु अपने चाचा साहब की इन तैयारियों से तग आ चुका है । एक दिन रात को मुन्नु अपने चाचा से छिपा कर “भूतनाथ” का पहला भाग लायब्रेरी से लाया । पलंग पर लेटकर एक बड़े नेता की तरह वह टांग चढ़ाकर इतमीनान से भूतनाथ पढ़ने लगा । अक्सर वह इसी तरह चन्द्रकान्ता, नरेन्द्रमोहिनी, कटोरा भरा खून आदि पुस्तकों में महात्मा गांधी और प० जवाहर लाल के जीवन चरित्र पढ़ता है ।

वह तन्मय होकर पढ़ रहा था। मुन्शी शिबबन लाल अफीम की गोली जमा लेने के बाद इतमीनान से पलंग पर लेटे हुए हुक्का गुड-गुडा रहे थे। एकाएक वे बोले “मुन्तू।”

मुन्तू ने हड़बड़ा कर उत्तर दिया, “जी-जी……हाँ।”

वे कहने लगे, “देखो बेटा, इस बार कांग्रेस में कुछ न कुछ बोलना जरूर। जरा लम्बा-सा व्याख्यान देना। इससे बड़ी धाक जम जायेगी।”

सारा मजा किरकिरा हो गया। कहाँ तो भूतनाथ अपना ऐयारी का बटुआ और पसेरी भर भग लेकर तिलस्म में घूमने जा रहे थे और कहाँ वह कमबख्त कांग्रेस का पुराना रोग।

मुन्तू बेचारा मन ही मन खिजलाया तो बहुत, पर आखिर में उसे कहना ही पड़ा, “जी हा, देखियेगा कि इस बार गाँधी जी और जवाहर लाल जी ने मेरी पीठ न ठोकी तब की बात। इस वक्त जरा उसी के व्याख्यान के लिये सुबास चन्द्र बोस की लिखी हुई ‘ब्रिटिश राज्य का तिलस्मी दरवाजा’ पढ़ रहा हूँ।”

मुन्शी जी पीनक से जरा चौंककर बोले, “अच्छा, सुबासचन्द्र जी की किताब है। यही तो इस साल कांग्रेस के सभापति हैं ना?”

मुन्तू ने कहा, “जी हां, इसी से तो उनकी ही किताब पढ़ रहा हूँ।”

वे प्रसन्नता पूर्वक बोले, “हां-हां बेटा, यह तो तुम अच्छा कर

रहै हो । खूब मन लगाकर पढ़ना ।”

मुन्नू ने कहा, “चाचा जी सचमुच बड़ा मन लग रहा है इस किताब में । बड़ी अच्छी किताब है ।”

वे बोले, “अच्छा-अच्छा, पढ़े जाओ । “फिर हुक्के के दो कश खीच कर भावावेश में कहने लगे, “भगवान करे मेरा मुन्नू भी एक दिन राष्ट्रपति बने । सब लोग इसकी जय-जयकार करें ।”

भूतनाथ एक ऐयार को लखलखा सुँघाकर उसकी गठरी बांधे जंगल के बीच से चले जा रहे थे ।

अपने चचा को प्रभावित करने के लिए मुन्नू पढ़ते-पढ़ते एका-एक कह उठा, “अहा ! वेरी नाइस !”

चचा साहब फिर बोले, “बड़ी अच्छी किताब मालूम होती है । मुन्नू जग जोर-जोर से पढ़ो तो बेटा, हम भी तो सुनें । क्या-क्या बातें लिखी हैं ।.....सच तो यह है बेटा, कि सारा धरमशास्त्र, पुरान, सब इन्ही किताबों में है आजकल ।”

मुन्नू के सिर पर जैसे पहाड़ सा टूट पड़ा । फिर भी मुन्नू अपने को सम्भालते हुए कह उठा, “इस समय मैं इसकी खास-खास बातों पर गौर कर रहा हूँ ।”

“अरे तो एक बार सुना जा न ? फिर दूसरी बार व्याख्यान के लिए पढ़ लेना । हा, सुना तो बेटा ।”

अजीब उलझन में पड़ा । बेचारे मुन्नू को उस समय कुछ भी

न सूझा कि क्या करे। नौकर भी उस वक्त मौजूद न था, वरना बिस्तर ठीक तौर पर न झाड़ने के बहाने ही उसे फटकारने लगता। पास में कोई राजनीतिक पुस्तक भी नहीं रखी थी कि उसे ही पढ़कर सुनाने लगता। उधर मुन्शी जी को अगर दो बार और मुन्नू से खुशामद करनी पड़ती तो वह नाराज हो जाते। बड़े पशोपेश में पड़कर आखिरकार मुन्नू ने किसी तरह पढ़ना शुरू किया।

“रात लगभग ग्यारह घड़ी के जा चुकी है। महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू और खा अब्दुल गफ्फार खा उत्कठा के साथ अगस्त मुनि की मूर्ति की तरफ देख रहे हैं। एक आले पर मोमबत्ती जल रही है, जिसकी रोशनी से उस मंदिर की सभी चीजे दिखाई दे रही हैं। महात्मा गांधी और प० जवाहर लाल का कलेजा उछल रहा है कि देखे अब यह मूर्ति क्या बोलती है।”

“यकायक कुछ गाने की आवाज आई, मालूम हुआ कि यही मूर्ति गा रही है। सब कोई बड़े गौर से सुनने लगे।”

सबहि दिन नाहि बराबर जात ।

कबहूँ करि पछताता ॥

इसके बाद मूर्ति इस तरह कहने लगी ।

“अहा। आज मैं अपने सामने किस-किस को बैठा देख रही हूँ। महात्मा मोहनदास ! धर्मात्मा जवाहर लाल ! मैं अभी धर्मात्मा कैसे कहूँ। क्या सम्भव है कि भविष्य में भी यह धर्मात्मा बना रहेगा ? खैर जो कुछ होना होगा, देखा जायेगा। हा, यह तीमरा आदमी मेरे

सामने कौन है ? वही अब्दुल गफ्फार खाँ, जिमने अपनी काया पलट कर दी और अपना नाम बदल कर सीमान्त गांधी कहलाया । अहा ! इस बात का किसी को स्वप्न में भी गुमान न था कि गोविन्द वल्लभ पंत ऐयार एक दिन दुश्मनों के तिलस्म का दारोगा बनेगा, धन्य है उसके साहस को ।”

इतना कह कर मूर्ति चुप हो गई ।

महात्मा गांधी इसके बाद उठे और जवा के दो फूल मूर्ति के चरणों पर चढ़ाकर हाथ जोड़कर खड़े हो गये । जवाहरलाल नेहरू और अब्दुल गफ्फार खा भी हाथ जोड़े खड़े हुये थे । मूर्ति ने फिर कहना शुरू किया ।

“अब एक काम करना कि ऐयार सुभासचन्द्र बोस को पश्चिम के फाटक की तरफ भेजना । बड़े से जंगल के बीच होकर विठ्ठल नगर के पास जब वह पहुँच जाये तो उनको चाहिये कि माथे पर मुकुट रखकर तथा महाराजा का वेश बना कर सिंहासन के बाएँ हाथ की खूँटी को खींच ले । लोग उनकी जय-जयकार करने लगेंगे और दुश्मनों को इस भेद का पता भी न लगने पायेगा ।.....अच्छा, अब इस वक्त जाओ । फतह होगी । और अगर बीच में कुछ घटना न घटी तो अगली अमावस्या के दिन मैं फिर इसी तरह बोलूँगी, तब आगे की बातें होंगी ।”

मुन्शी जी बड़े गौर से सुन रहे थे । एकाएक बोले, “क्यों मुन्तू, यह बातें तो एक दम नई हैं । अच्छा, क्या इसमें तिलस्मी भी हो रही है ?”

मुन्तू घबराया तो जरूर, लेकिन चट में उत्तर दिया, “जी

यह तो कोई खास बात नहीं, चाचा जी। आप समझिये कि यह साइन्स का जमाना है, लेकिन महात्मा गांधी जी ने कहा कि हम अपने स्वदेशी तरीके से ही लड़ाई जीतेगे। इसमें आगे चलकर बड़ी-बड़ी बातें हैं।”

चचा साहब ने हुक्का गुडगुड़ाते हुए कहा, “अच्छा आगे पढो।”

मुन्नू ने पढ़ना शुरू किया, “ऐयार सम्राट महात्मा गांधी जब अपनी ऐयारी का बटुआ और पसेरी भर भंग की भोली लाद कर चले…………।”

“लेकिन मुन्नू”, चाचा जी ने बीच ही में टोक कर कहा, “महात्मा गांधी तो भग पीते नहीं। फिर यह क्या लिखा है?”

मुन्नू ने कहा, “बात यह है चाचा जी कि महात्मा जी अंग्रेजों को धोके से भग पिलाकर नशे में लाना चाहते थे न?”

इसके बाद वह कुछ न बोले। मुन्नू ने पढ़ना शुरू किया।

“बियावान जंगल में एक बरगद के पेड़ के पास टूटा सा शिवाला बना हुआ था। महात्मा गांधी बड़ी होशियारी से उस मंदिर में घुसे और महादेव जी की मूर्ति पर लिपटे हुए सांप का फन पकड़ कर जोर से उमेठ दिया। तब एकाएक क्या देखते हैं कि पास की जमीन फट गई। महात्मा जी बड़ी सावधानी से सीढ़ियां उतरने लगे। उनके उतरने के साथ ही साथ जमीन अपने आप ही ठीक हो गई। नीचे उतर कर देखते क्या हैं कि एक चौकोर कमरा बना हुआ

है जिसमें काले और सफेद पत्थर जड़े हुए हैं तथा कमरे के चारों ओर चार मूर्तियां तीर कमान लिये खड़ी हुई है।

ऐयार सम्राट महात्मा गांधी ने उस जगह दो मिनट तक चुपचाप खड़े रहने के बाद फर्श पर जड़े हुए एक सफेद पत्थर पर धीरे से पैर रक्खा तो देखते क्या हैं कि चारों कोनों पर खड़ी हुई मूर्तियों ने अपना तीर कमान संभाला। महात्मा जी ने फौरन ही पत्थर से पैर हटा लिया। सफेद पत्थर से पैर हटाकर उन्होंने उसे फिर काले पत्थर पर रक्खा तो कुछ भी नहीं हुआ। इस प्रकार सतर्कता पूर्वक काले पत्थरों पर पैर रखते हुए महात्मा जी धीरे-धीरे उन मूर्तियों के पास पहुंचे और उनके हाथ से तीर खींच लिए। इसके बाद फिर उन्होंने सफेद पत्थर पर पैर रक्खा तो देखते क्या हैं कि मूर्तियां फिर हिली, पर उनके हाथ में अब तीर तो थे नहीं, इसलिए मूर्तियां खाली हरकत कर रह जाती थी। महात्मा जी ने सतोष की एक गहरी सांसें ली। फिर जाकर हर मूर्ति के अंगों को टटोलने लगे। एक मूर्ति के पास जाकर ज्योंही उन्होंने उसकी कमान को अपनी ओर खींचा त्योंही धड़ाके के साथ पास की दीवार का पत्थर हट गया और एक सुरंग नजर आई। महात्मा जी ने अपने ऐयारी के बटुए से मोमबत्ती का टुकड़ा निकाला और उसे चकमक पत्थर से जलाकर सुरंग में पेंटे। लगभग तीस कोस उस सुरंग में जाने के बाद देखते क्या हैं कि एक किला बना हुआ है, जिसके चारों तरफ एक खाई बनी है तथा उसमें एक चाँदी की डोंगी किनारे पर बैठी हुई है और सोने की एक पतवार उसमें रक्खी हुई है। महात्मा जी ने तिलस्म की किताब खोल कर देखा तो हकीमों ने लिखा था कि तिलस्म में घुसने वाले को चाहिए कि पतवार को पहले अपने हाथ में उठा ले, फिर डोंगी में बैठ जाये तो डोंगी अपने आप ले जायेगी। महात्मा जी ने वैसा ही किया।

डोंगी सराटे के साथ तीर की तरह चली और जाकर किले के फाटक पर रुक गई। महात्मा जी डोंगी से उतर कर फाटक के पास आये। भीतर जाकर देखा तो एक पहरेदार बैठा ऊँघ रहा था। महात्मा जी ने बड़ी चतुराई के साथ उसे लखलखा मुँघा कर बेहोश कर दिया। फिर उसकी गठरी बाघ कर पास की एक झोंपड़ी में गये। वहाँ उन्होंने बटुए से निकाल कर एक दवा उसकी जीभ में लगा दी, जिससे कि वह एठ गई। फिर उसके बाद बटुए से सामान निकाल कर उसका सारा रूप बनाकर किले में घुसे। आगे बढ़कर आँगन में एक तालाब था। महात्मा जी उसमें कूद पड़े। तालाब के नीचे एक दरवाजा मिला। महात्मा जी उसमें चले गये। देखते क्या हैं कि अन्दर एक बारहदरी बनी हुई है, उसमें बारह कोठरियाँ बनी हैं। महात्मा जी ने सात नम्बर की कोठरी का ताला खोला तो उसमें कस्तूर बाई गांधी मिली। महात्मा जी को देख कर कस्तूर बाई बड़ी प्रसन्न हुई। हुमस कर कहा, “अहा, इतने दिनों बाद दुख और कष्ट भेल कर तुम मुझे छुड़ाने तो आये। तुम धन्य हो भूतनाथ……।”

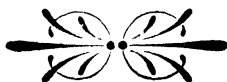
अरे राम रे ! मुन्नू की ज़बान जैसे कट सी गई। मुन्शी जी शिबबनलाल अब तक बड़े आश्चर्य और कौतूहल के साथ यह सब सुन रहे थे। उन्हें सचमुच इस कथा का सुन कर आश्चर्य हो रहा था। सभी बातें एक दम अजीबो-गरीब, एकदम नई थीं। वे अचकचा कर बोले, “ऐ ये भूतनाथ क्या बला है ? तुम भूतनाथ ऐयार का किस्सा पढ़ रहे हो ?

हकलाती ज़बान से मुन्नू ने कहा, “नहीं तो चाचा जी, ये ब्रिटिश राज्य का तिलस्मी दरवाजा है।”

चाचा साहब को बड़ा तैश आ गया। बोले, “अबे लौडे,

मुझको चरायेगा ? साठ का सिन होने आया । तमाम जिन्दगी तहसीलदारी करते गुजरी । मेरे मातहत कारिन्दा लोग मुझसे थर-थर कापते थे और तू मुझको ही उल्लू बनायेगा । ये बाल धूप में सफेद नहीं हुए । निकल जा । चल हट मेरे सामने से नालायक ।”

मुन्तू की आँखों की पुतलियों के बार-बार जोर से फड़कने से उसके दिमाग का दरवाजा खुल गया । उसे कुछ भी सुझाई न पड़ा । अपने चाचा की चरण-रूपी खूँटी को बार-बार हिलाकर उनके दिल की बारहदरी से प्रेम को लौटाने की बार-बार कोशिश में मुन्तू की आँखो ही आँखो में आँसू आ गये ।



भतीजी की ससुराल में

रायबरेली नहीं, बासबरेली की बात कह रहा हूँ-वही, जहाँ पागलखाना है, लकड़ी का काम होता है, जहाँ की पूड़ी और चाट मशहूर है, जहाँ एक बार मुशायरे में शामिल होने के लिये हजरत 'शौकत' खानवी को थर्ड का टिकट लेकर सैकेड क्लास में जाने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है, जिसकी बदौलत उनकी 'डब्लू. टी.' कहानी उनके दिल के फफोले का मरहम बन चुकी है।

स्कूल में जागरफी और ज्योमेटरी इन्ही दोनों से डरता रहा, वर्ना आज मैं कम से कम यह तो बतला ही सकता था कि बरेली लखनऊ से किस दिशा में पड़ता है। फिर भी बुद्धिमानों के लिये इतना इशारा दे देना काफी होगा कि रात के दस बजकर सत्ताइस की गाड़ी से दिसम्बर की कड़कती हुई सर्दी में मुझे बरेली जाना पड़ा। सडीला, हरदोई, तिलहर, शाहजहापुर आदि स्टेशन बीच में पड़े थे, और यह भी सुना करता हूँ कि बरेली से हाथ भर के फासले पर मुरादाबाद भी है।

भतीजी को ससुराल से विदा कराने जा रहा था। चलते वक्त तक अम्मा, बाबू, भइया और भौजी सबने इस बात की चेतावनी दे दी थी कि समधी के यहाँ खाना मत। मैंने भी इसे रूमाल में गाँठ बांध कर याद रखी।

कहना नहीं होगा कि मैं बर्थ पर बिस्तर बिछाकर आराम से बरेली पहुँच गया ।

कड़ाके की सर्दी में मैं लाख बार चेष्टा करने पर भी स्टेशन पर दतून कुल्ला, स्नान ध्यान और जलपान करने का साहस सबेरे-सबेरे न कर सका । यह सोचकर गया था कि दिन में ग्यारह बजे की गाड़ी से सवार होकर शाम के चार बजे तक घर वापस आ जाऊँगा ।

नाश्ते के लिये जिस वक्त सामने चाय और मेवा आई तो इच्छा हुई कि प्रतिज्ञा भग कर दूँ, परन्तु साहस न हुआ । सोचने लगा कि इस महीने में प्रदोष के दो व्रत न सही तीन सही । जी कड़ा करके हाथ जोड़ कर विनीत भाव से मैंने कहा, “माफ़ी चाहता हूँ । बस कृपा भाव बनाये रखें ।”

“देखिये साहब, मैं इस रिवाज के सख्त खिलाफ हूँ कि लड़की वाला अपने समधी और दामाद के यहाँ कुछ खाये पिये नहीं ।” लड़के के पिता ने कहा । मैं सोचने लगा कि घन्टे-डेढ़ घन्टे के लिये इनके यहाँ रहना है, फिर अहसान क्यों लिया जाये । हाथ जोड़कर मैंने खीसे निपोरते हुये कहा, “हे ! हैं ! हैं ! बाबू जी इसकी तो कोई बात नहीं है । कल रात चलते वक्त कुछ इतना अधिक खा गया था कि अभी तक हज़म नहीं हुआ । खट्टी डकारें आ रही हैं, रात भर जागा हूँ इस लिये सर में दर्द भी है । इस वक्त न खाऊँगा तो तबीयत ठीक हो जायेगी ।”

लाचारी का भाव प्रकट करते हुये समधी साहब ने कहा, “खैर फिर आपकी मर्जी । उस ख्याल से अगर आप खाना न खाते हो तो मैं वाकई व्रत बरा मानँगा ।”

“अजी वाह, अजी वाह आप तो कैसी बातें करते हैं, बाबू जी। अरे सब आप ही का दिया तो खाते हैं।”

बाबू जी ने कन्टोप से कान ठीक तरह ढकते हुए प्रसन्न भाव से कमर पर हाथ बांध कर कमरे में टहलना शुरू किया।

घड़ी ने नौ बजाये और मैने समधी साहब से कहना शुरू किया कि साहब जल्दी कीजिये, गाड़ी का मामला है। दिन भर के बाद शाम होते-होते अपने घर पहुँच जाएँगे।

समधी साहब भी उस वक्त हा-में-हा मिलाकर, तडपड़ घर में घुस कर घरवाली से बार-बार सुना आते की बहू को ग्यारह बजे वाली गाड़ी से जाना है। उसके चाचा जल्दी मचा रहे हैं।

घरवाली आखिर लड़के की मा थी। खीझ कर वह एकाएक मन ही मन यह निश्चय कर बैठी कि ग्यारह बजे की गाड़ी से वह अपनी बहू को न जाने देगी।

नौ बजा, मवा नौ, साढ़े नौ, पौने दस, साढ़े दस, घर से स्टेशन का आध घन्टे का रास्ता है और ठीक ग्यारह बज कर पाच मिनट पर गाड़ी लखनऊ के लिये रवाना हो जाती है।

मैने उनसे बार-बार कहा कि देखिये गाड़ी छूटने वाली है आप कृपया बच्ची को विदा करने की व्यवस्था करें, और वह बार-बार घर में जाकर घरवाली से झगड़ लेते थे। इस प्रकार जल्दी-जल्दी करते हुए घड़ी ने पौने ग्यारह बजा दिये, और जब ग्यारह बजने में पाच मिनट बाकी थे तब समधी साहब ने आकर फरमाया, “तागा मँगा

दूँ, जल्दी कीजिये।” जेब से टाइमटेबुल निकालकर मैंने उन्हें दिखाते हुये कहा, “अब तो मोटर भी शायद वक्त पर स्टेशन न पहुँच सके।”

मैं सचमुच मन-ही-मन भुँभला रहा था।

उन्होंने केवल मौखिक रूप में लाचारी प्रकट कर मुझ से माफी मांग कर छुट्टी पा ली। यहा दिनभर के लिये पेट पर नौबत बज गई।

यहा तक तो हुई भूमिका।

×

×

×

×

बाग्रह वजे।

घर के अन्दर थालियो की भभनाहट और रोटी के लिए बच्चो का भगड़ना बाहर स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ रहा था। सोचने लगा, आज सबेरे आख खुलते ही किस का मुँह देखा था। याद आता है कि किसी छोटे स्टेशन पर गाड़ी रुकने से जब मेरी नीद खुली थी, सामने प्लेटफार्म पर एक “टामी” हाथ में अपने टामी की जजीर पकड़े मुँह में सिगार दबाये हुये टहल रहा था। खटका तो उसी समय हुआ कि आखिर सबेरे-सबेरे मुझे सुग्रीव की सेना के एक सिपाही के दर्शन करने का क्या फल मिलेगा। परन्तु यह नही मालूम था कि आज इसके फल-स्वरूप सौलहो दड की एकादशी मनानी पड़ेगी।

समधी साहब हाथ मलते हुए बाहर आये और बाणी में गुड़ घोलकर कहने लगे, “चलिये भइया साहब रोटी तैयार है।”

बजाय मेरी भतीजी की मसुराल वालों के यदि किसी और ने

मुझसे यह कहा होता, तो अवश्य ही मैं अपने मन मंदिर में उसकी काल्पनिक मूर्ति स्थापित कर उसके पोपले गालों को चूमकर उसकी गजी खोपड़ी पर प्रेम से हाथ फेरते हुए कहता कि बेटा जुग-जुग जियो। खीर की कड़ाही में तुम्हारा सिर हो और भगवान तुम्हे ओकासा और भीनसीन गोल्ड टानिक पिल्स तक सेवन करने की शक्ति प्रदान करे। प्रत्यक्ष रूप में उसके सामने नम्रता की सजीव प्रतिमा बनकर नाजो-अन्दाज के साथ उनका प्रस्ताव स्वीकार कर चट से भोजन-शाला की ओर पैर बढ़ा देता। लेकिन यहाँ तो बच्चों का ससुर मेरे सामने रोटी का प्रस्ताव रखता हुआ मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे भूखे अनशन व्रतधारी राजबन्दी की बैरक के सामने जेलर महोदय दूधिया हलवा सोहन और गर्मा-गरम समोसो का भोग लगा रहे हो।

मैंने उनसे कहा, “क्या बताऊँ अभी तक खट्टी डकारें आ रही हैं। कल का खाना अब तक कम्बख्त कुबड़े की तरह मेरे पेट की थैली में आसन जमाये बैठा है।”

उन्होंने कहा, “आप तो बड़े मजाकिये मालूम होते हैं। अब की जब आप के भाई साहब को पत्र लिखूँगा तो इसका जिक्र जरूर करूँगा कि भाई बाहू क्या खुश मिजाज भाई पाया। सच मानिये आप में मिलकर तबीयत बहुत ही खुश हुई।”

भूखे पेट से व्यग और खिजलाहट का राम-बाण सर से छूटा। अपनी बत्तीसी बाहर की ओर निपोरते हुए मैंने कहा, “हे ! हे !! यकीन मानिये कि आपके यहाँ आकर तथा आपके दर्शन कर मेरी तबीयत भी बहुत ही प्रसन्न हुई।”

थोड़ी देर तक और इसी तरह “ना-हां” का मधुर सम्भाषण

होने के बाद वह यह कहते हुए अन्दर चले गये, “फिर जैसी आपकी मर्जी।”

शरीर के अन्दर ऐसा मालूम होने लगा कि कुक्षेत्र का मैदान बन गया है। उसी समय भगवान् कृष्ण और अर्जुन का रथ मेरे हृदय पथ के खाँचे में खड़खड़ करता हुआ आगे बढ़ गया। आज इस समय पेट पर हाथ फेरता हुआ, पान चबाकर मैं भलिभाति सोच विचार कर यह बात निश्चय-पूर्वक कह सकता हूँ कि उस दिन कृष्ण जी ने दो मिनट के अन्दर गीता के अट्टारहों अध्याय सुना दिये थे। मन में रह-रह कर यही ख्याल आ रहा था कि यदि इस समय यमराज रूपी धोबी आकर मेरे इस पुराने मैले शरीर रूपी कपड़े को धोने ले जाकर मुझे नई खोल पहना दे, तो कम से कम किसी अँधेरे घर का चिराग बनकर, नई अम्मा के स्तनों का दूध पीकर अपने पेट की ज्वाला शान्त करूँ। मचमुच गीता का वह श्लोक मुझे तब से मारहीन मालूम पड़ता है। खैर, उसके बाद ही मुझे ऐसा मालूम पड़ने लगा कि मेरे पेट रूपी रथ के साथी सखा कृष्ण की उत्तेजनामयी आध्यात्मिक बातों को मुनकर उत्तेजित अवस्था में नरोत्तम अर्जुन ने कुछ भाव से गान्डीव को टकाया।

रोत्रे उठ खड़े हुए, दिमाग की नसें झन-झन कर बज उठी। हृदय-रूपी शमशान पर आशा की चिता थक-थक चट-चट जलने लगी। एकाएक ख्याल आया कि कल रात चलते समय भौजी ने ओवर-कोट की जेब में मेवा भर दी थी। जेब भारी हो जाने के ख्याल से मैंने उसे उलट कर वहीं पटक दिया था। शीघ्रता-पूर्वक कुर्सी से उठकर खूँटी पर टँगे हुए ओवरकोट की जेबों को टटोलने लगा। काश, उस वक़्त किशमिश और काजू के तीन चार दाने निकल आते।.....शरद बावू के “चरित्र-हीन” की प्रधान पात्री किरणमयी की भाँति हाथ से

अपना ललाट ठोकते हुए मैंने भी कह दिया, “हाय रे जला कपाल ।”

समधी साहब खा-पी कर लम्बी डकार मारते और “ओश्म्-ओश्म्” करते हुए कमरे में दाखिल हुए । सोच रहा था कि बाज़ार घूमने के बहाने किसी हलवाई के यहा जाकर अपने पेट को तर्पण दूँ । इसी इच्छा से मैंने कोट और टोपी उठाई ।

“कहिये साहब किधर सवारी जा रही है ।” उन्होंने कहा, “कुछ नही ऐसे बैठे-बैठे तबीयत ऊबने लगी, मैंने कहा चलो बाजार ही घूम लिया जाये ।”

वे तत्परता के साथ बोले, “अरे साहब, अकेले कहा जाइयेगा । आप को मालूम नही बरेली के तागे वाले साले बड़े बदमाश होते हैं । और फिर आप नए आदमी ठहरे । चलिये मैं भी साथ चलता हूँ ।”

मैंने बड़ी ना-नू की, परन्तु वह न माने । तागे वालों की बदमाशियों का वर्णन करते हुए उन्होंने कपड़े पहनना आरम्भ किया ।

मैंने अपने मन में कहा कि बरेली के सिर्फ तागे वाले ही नही, वरन सभी लोग अव्वल दरजे के पाजी होते है ।

तांगा जब शहर की भीड़-भरी सड़कों पर दौड़ रहा था, तब मैं केवल यही देख रहा था कि आखिर बरेली की इतनी बड़ी आबादी में कितने आदमी मेरे समान छैल-चिकनिया बने प्रसन्नता और बीमारी का अभिनय करते हुए अपने पेट को चूहों की कुस्ती का अखाड़ा बना कर घूम रहे हैं ।

सड़क पर थोड़ा आगे बढ़कर एक हलवाई की दूकान नज़र

